unacademy



रामकाव्य परंपरा

unacademy

प्रारम्भिक राम काव्य

रामकथा का आरंभ – वाल्मीकि रामायण

वाल्मीकि रामायण के राम अलौकिक पुरुष

वाल्मीकि रामायण की कथा महाभारत मे भी कई स्थलों पर मिलती है –

अरण्य	द्रोण	शांति पर्व	**महाभारत के राम अवतारी राम**

unacademy

बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में राम कथा

महापुरुष राम

जातक- दशरथ जातक, अनामर्क जातक, त्रिपिटक

जैन परंपरा-

- विमल सूरी – पउम चरिऊ
- गुणाढ्य – वृहत कथा
- स्वयंभू- पउम चरिऊ
- पुष्पदंत - महापुराण

दक्षिण के अलवारों में राम भक्ति

संख्या में 12 थे

शठकोप-

- राम की पादुका के अवतार
- रचना- तिरुवायमोली, सर्वप्रथम इसी मे रामभक्ति का वर्णन मिलता है।

कुलशेखर- सातवें अलवार

- रचना- प्ररुमलतिरोभूवि

रंगनाथ मुनि(श्रीसंप्रदाय के प्रथम आचार्य)-

- नलियार दिव्यप्रबन्धम का संकलन किया चार भागों में

श्री संप्रदाय

- श्री संप्रदाय
  - संस्थापक- रामानुज(शेष या लक्ष्मण के अवतार)
  - प्रथम आचार्य- रंगनाथ मुनि
  - अन्य आचार्य- पुंडरीकाक्ष, राम मिश्र, यमुनाचार्य
  - राघवानंद ने उत्तर भारत मे रामभक्ति परंपरा का प्रवर्तन किया
  - रामानन्द ने उसे युगानुकूल भावभूमि प्रदान की

unacademy

संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश

- भाष रचित नाटक
  - प्रतिमा एवं अभिषेक
- कालीदास – रघुवंश
- प्रवरसेन - रावण वध(रावण वहो, महाराष्ट्री प्राकृत)
- भवभूति
  - उत्तरराम चरित
  - महावीर चरित
- कुमारदास – जानकी हरण
- क्षेमेन्द्र – रामायण मंजरी
- जयदेव – प्रसन्न राघव

unacademy

अन्य भारतीय भाषाओं में राम काव्य

- बांग्ला – कृत्तिवास कृत रामायण
- तमिल – कंब कृत रामायण
- तेलगू – रंग रामायण, भाष्कर रामायण
- मराठी – संत एकनाथ कृत भावार्थ रामायण
- आसामिया – पद्म रामायण
- शंकरदेव आसामिया के प्रमुख राम भक्त कवि माने गए।

unacademy

unacademy

तुलसीदास- शुक्ल

unacademy

प्रकरण 4

सगुणधारा

रामभक्ति शाखा

जगत्प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्यजी ने जिस अद्वैतवाद का निरूपण किया था, वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक् प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्यजी (संवत् 1073) ने खड़ा किया। उनके विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत् के सारे प्राणी हैं जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते हैं। अतः इन जीवों के लिए उद्धार का मार्ग यही है कि वे भक्ति द्वारा उस अंशी का सामीप्य लाभ करने का प्रयत्न करें। रामानुजजी की शिष्य परंपरा देश में बराबर फैलती गई और जनता भक्तिमार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। रामानुजजी के श्री संप्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना है। इस संपद्राय में अनेक अच्छे साधु महात्मा बराबर होते गए।

unacademy

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के अंत में वैष्णव श्री संप्रदाय के प्रधान आचार्य श्री राघवानंदजी काशी में रहते थे। अपनी अधिक अवस्था होते देख वे बराबर इस चिंता में रहा करते थे कि मेरे उपरांत संप्रदाय के सिद्धांतों की रक्षा किस प्रकार हो सकेगी। अंत में राघवानंदजी रामानंदजी को दीक्षा प्रदान कर निश्चिंत हुए और थोड़े दिनों में परलोकवासी हुए। कहते हैं कि रामानंदजी ने भारतवर्ष का पर्यटन करके अपने संप्रदाय का प्रचार किया।

स्वामी रामानंदजी के समय के संबंध में कहीं कोई लेख न मिलने से हमें उसके निश्चय के लिए कुछ आनुषंगिक बातों का सहारा लेना पड़ता है। वैरागियों की परंपरा में रामानंदजी का मानिकपुर के शेख तकी पीर के साथ वादविवाद होना माना जाता है। ये शेख तकी दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी के समय में थे। कुछ लोगों का मत है कि ये सिकंदर लोदी के पीर (गुरु) थे और उन्हीं के कहने से उसने कबीर साहब को जंजीर से बाँधकर गंगा में डुबाया था। कबीर के शिष्य

धर्मदास ने भी इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है–

साह सिकंदर जल में बोरे, बहुरि अग्नि परजारे।
मैमत हाथी आनि झुकाए, सिंहरूप दिखराए॥
निरगुन कथैं, अभयपद गावैं, जीवन को समझाए।
काजी पंडित सबै हराए, पार कोउ नहिं पाए॥

शेख तकी और कबीर के संवाद प्रसिद्ध ही हैं। इससे सिद्ध होता है कि रामानंदजी दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी के समय में वर्तमान थे। सिकंदर लोदी संवत् 1546 से संवत् 1574 तक गद्दी पर रहा। अतः इन 28 वर्षों के काल विस्तार के भीतर–चाहे आरंभ की ओर, चाहे अंत की ओर–रामानंदजी का वर्तमान रहना ठहरता है।

कबीर के समान सेन भगत भी रामानंदजी के शिष्यों में प्रसिद्ध हैं। ये सेन भगत बाँधवगढ़ नरेश के नाई थे और उनकी सेवा किया करते थे। ये कौन बाँधवगढ़ नरेश थे, इसका पता 'भक्तमाल रामरसिकावली' में रीवाँ नरेश महाराज रघुराज सिंह ने दिया है–

बाँधवगढ़ पूरब जो गायो । सेन नाम नापित तहँ जायो॥
ताकी रहै सदा यह रीती । करत रहै साधुन सों प्रीती॥
तहँ को राजा राम बघेला । बरन्यो तेहि कबीर को चेला॥
करै सदा तिनकी सेवकाई । मुकर दिखावै तेल लगाई॥

[illegible] में राजा राम या रामचंद का समय संवत् 1611 से

करें सदा तिनका सबकाइ ।पुकर

रीवाँ राज्य के इतिहास में राजा राम या रामचंद्र का समय संवत् 1611 से 1648 तक माना जाता है। रामानंदजी से दीक्षा लेने के उपरांत ही सेन पक्के भगत हुए होंगे। पक्के भगत हो जाने पर ही उनके लिए भगवान् के नाई का रूप धरने वाली बात प्रसिद्ध हुई होगी। उक्त चमत्कार के समय वे राजसेवा में थे। अतः राजा रामचंद्र से अधिक से अधिक 30 वर्ष पहले यदि उन्होंने दीक्षा ली हो तो संवत् 1575 या 1580 तक रामानंदजी का वर्तमान रहना ठहरता है। इस दशा में स्थूल रूप से उनका समय विक्रम की 15वीं शती के चतुर्थ ओर 16वीं शती के तृतीय चरण के भीतर माना जा सकता है।

'श्री रामार्चन पद्धति' में रामानंदजी ने अपनी पूरी गुरुपरंपरा दी है। उसके अनुसार रामानुजाचार्यजी रामानंदजी से 14 पीढ़ी ऊपर थे। रामानुजाचार्य का परलोकवास संवत् 1194 में हुआ। अब 14 पीढ़ियों के लिए यदि हम 300 वर्ष रखें तो रामानंदजी का समय प्रायः वही आता है जो ऊपर दिया गया है। रामानंदजी का और कोई वृत्त ज्ञात नहीं।

तत्त्वतः रामानुजाचार्यजी के मतावलंबी होने पर भी अपनी उपासनापद्धति का उन्होंने विशेष रूप रखा। उन्होंने उपासना के लिए बैकुंठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करनेवाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूलमंत्र हुआ राम नाम। पर इससे यह नहीं समझना

चाहिए कि इनके पूर्व देश में रामोपासक भक्त होते ही न थे। रामानुजाचार्यजी ने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया उसके प्रवर्तक शठकोपाचार्य उनसे पाँच पीढ़ी पहले हुए हैं। उन्होंने अपनी 'सहस्रगीति' में कहा है—'दशरथस्य सुतं तं बिना अन्यशरणवान्नास्मि'। श्री रामानुज के पीछे उनके शिष्य कुरेशस्वामी हुए जिनकी 'पंचस्तवी' में राम की विशेष भक्ति स्पष्ट झलकती है। रामानंदजी ने केवल यह किया कि विष्णु के अन्य रूपों में 'रामरूप' को ही लोक के लिए अधिक कल्याणकारी समझ छाँट लिया और एक सबल संप्रदाय का संघटन किया। इसके साथ ही साथ उन्होंने उदारतापूर्वक मनुष्य मात्र को इस सुलभ सगुणभक्ति का अधिकारी माना और देशभेद, वर्णभेद, जातिभेद आदि का विचार भक्ति मार्ग से दूर रखा। यह बात उन्होंने सिद्धों या नाथपंथियों की देखादेखी नहीं की, बल्कि भगवद् भक्ति के संबंध में महाभारत, पुराण आदि के कथित सिद्धांत के अनुसार की। रामानुज संप्रदाय में दीक्षा केवल द्विजातियों को दी जाती थी, पर स्वामी रामानंद ने रामभक्ति के द्वार सब जातियों के लिए खोल दिया और एक उत्साही विरक्त दल का संघटन किया, जो आज भी 'बैरागी' के नाम से प्रसिद्ध है। अयोध्या, चित्रकूट आदि आज भी वैरागियों के मुख्य स्थान हैं।

भक्तिमार्ग में इनकी उदारता का अभिप्राय यह कदापि नहीं है—जैसा कि कुछ लोग समझा और कहा करते हैं—कि रामानंदजी वर्णाश्रम के विरोधी थे। समाज के लिए वर्ण और आश्रम की व्यवस्था मानते हुए वे भिन्न भिन्न कर्तव्यों की योजना स्वीकार करते थे। केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबका समान अधिकार स्वीकार किया। भगवद्भक्ति में वे किसी भेदभाव को आश्रय नहीं देते थे। कर्म के क्षेत्र में शास्त्रमर्यादा इन्हें मान्य थी; पर उपासना के क्षेत्र में किसी प्रकार का लौकिक प्रतिबंध ये नहीं मानते थे। सब जाति के लोगों को एकत्र कर रामभक्ति का उपदेश ये करने लगे और राम नाम की महिमा सुनाने लगे।

रामानंदजी के ये शिष्य प्रसिद्ध हैं—कबीरदास, रैदास, सेन नाई और गाँगरौनगढ़ के राजा पीपा, जो विरक्त होकर पक्के भक्त हुए।

रामानंदजी के रचे हुए केवल दो संस्कृत के ग्रंथ मिलते हैं—वैष्णवमताब्जभास्कर और श्री रामार्चनपद्धति। और कोई ग्रंथ इनका आज तक नहीं मिला है।

इधर सांप्रदायिक झगड़े के कारण कुछ नए ग्रंथ रचे जाकर रामानंदजी के नाम से प्रसिद्ध किए गए हैं—जैसे, ब्रह्मसूत्रों पर आनंद भाष्य और भगवद्गीताभाष्य—जिनके संबंध में सावधान रहने की आवश्यकता है। बात यह है कि कुछ लोग रामानुज परंपरा से रामानंदजी की परंपरा बिलकुल स्वतंत्र और अलग सिद्ध करना चाहते हैं। इसी से रामानंदजी को एक स्वतंत्र आचार्य प्रमाणित करने के लिए उन्होंने उनके नाम पर एक वेदांतभाष्य प्रसिद्ध किया है। रामानंदजी समय समय पर विनय और स्तुति के हिन्दी पद भी बनाकर गाया करते थे। केवल दो-तीन पदों का पता

अब तक लगा है। एक पद तो यह है जो हनुमानजी की स्तुति में है—

आरति कीजै हनुमान लला की । दुष्टदलन रघुनाथ कला की॥
जाके बल भर ते महि काँपे । रोग सोग जाकी सिमा न चाँपे॥
अंजनी-सुत महाबलदायक । साधु-संत पर सदा सहायक॥
बाएं भुजा सब असुर सँहारी । दहिन भुजा सब संत उबारी॥
लछिमन धरती में मूर्छि पर्‌यो । पैठि पताल जमकातर तोर्‌यो॥
आनि सजीवन प्रान उबार्‌यो । मही सब्रन कै भुजा उपार्‌यो॥
गाढ़ परे कपि सुमिरौं तोहीं । होहु दयाल देहु जस मोहीं॥
लंकाकोट समुंदर खाई । जात पवनसुत बार न लाई॥
लंक प्रजारी असुर सब मार्‌यो । राजा राम के काज सँवार्‌यो॥
घंटा ताल झालरी बाजै । जगमग जोति अवधपुर छाजै॥
जो हनुमानजी की आरती गावै । बसि बैकुंठ अमर पद पावै॥
लंक विध्वंस कियो रघुराई । रामानंद आरती गाई॥
सुर नर मुनि सब करहिं आरती । जै जै जै हनुमान लाल की॥

स्वामी रामानंदजी का कोई प्रामाणिक वृत्त न मिलने से उनके संबंध में कई प्रकार के प्रवादों के प्रचार का अवसर लोगों को मिला है। कुछ लोगों का कहना है कि रामानंदजी अद्वैतियों के ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी थे। इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि यह संभव है कि उन्होंने ब्रह्मचारी रहकर कुछ दिन उक्त मठ में वेदांत का अध्ययन किया हो, पीछे रामानुजाचार्य के सिद्धांतों की ओर आकर्षित हुए हों।

दूसरी बात जो उनके संबंध में कुछ लोग इधर उधर कहते सुने जाते हैं वह यह है कि उन्होंने बारह वर्ष तक गिरनार या आबू पर्वत पर योगसाधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। रामानंदजी के जो दो ग्रंथ प्राप्त हैं तथा उसके संप्रदाय में जिस ढंग की उपासना चली आ रही है उससे स्पष्ट है कि वे खुले हुए विश्व के बीच भगवान् की कला की भावना करनेवाले विशुद्ध वैष्णव भक्तिमार्ग के अनुयायी थे, घट के भीतर ढूँढ़ने वाले योगमार्गी नहीं। इसलिए योग साधनावाली प्रसिद्धि का रहस्य खोलना आवश्यक है।

भक्तमाल में रामानंदजी के बारह शिष्य कहे गए हैं—अनंतानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, भावानंद, पीपा, कबीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती और सुरसरी।

अनंतानंदजी के शिष्य कृष्णदास पयहारी हुए जिन्होंने गलता (अजमेर राज्य, राजपूताना) में रामानंद संप्रदाय की गद्दी स्थापित की। यही पहली और सबसे प्रधान गद्दी हुई। रामानुज संप्रदाय के लिए दक्षिण में जो महत्त्व तोताद्रि का था वही महत्त्व रामानंद संप्रदाय के लिए उत्तर भारत में गलता को प्राप्त हुआ। यह 'उत्तर तोताद्रि' कहलाया। कृष्णदास पयहारी राजपूताने की ओर के दाहिमा (दाधीच्य) ब्राह्मण थे।

जैसा कि आदिकाल के अंतर्गत दिखाया जा चुका है, भक्ति आंदोलन के पूर्व देश में—विशेषतः राजपूताने में—नाथपंथी कनफटे योगियों का बहुत प्रभाव था जो अपनी सिद्धि की धाक जनता पर जमाए रहते थे। जब सीधे सादे वैष्णव भक्तिमार्ग का आंदोलन देश में चला तब उसके प्रति दुर्भाव रखना उनके लिए स्वाभाविक था। कृष्णदास पयहारी जब पहले पहल गलता पहुँचे, तब वहाँ की गद्दी नाथपंथी योगियों के अधिकार में थी। वे रात भर टिकने के विचार से वहीं धूनी लगाकर बैठ गए। पर कनफटों ने उन्हें उठा दिया। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस पर पयहारीजी ने भी अपनी सिद्धि दिखाई और वे धूनी की आग एक कपड़े में उठाकर दूसरी जगह जा बैठे। यह देख योगियों का महंत बाघ बनकर उनकी ओर झपटा। इस पर पयहारीजी के मुँह से निकला कि 'तू कैसा गदहा है?' वह महंत तुरंत गदहा हो गया और कनफटों की मुद्राएँ उनके कानों से निकल निकलकर पयहारीजी के सामने इकट्ठी हो गईं। आमेर के राजा पृथ्वीराज के बहुत प्रार्थना करने पर महंत फिर आदमी बनाया गया। उसी समय राजा पयहारीजी के शिष्य हो गए और गलता की गद्दी पर रामानंदी वैष्णवों का अधिकार हुआ।

unacademy

नाथपंथी योगियों के कारण जनता के हृदय में योगसाधना और सिद्धि के प्रति आस्था जमी हुई थी।[1] इससे पयहारीजी की शिष्यपरंपरा में योगसाधना का भी कुछ समावेश हुआ। पयहारीजी के दो प्रसिद्ध शिष्य हुए—अग्रदास और कील्हदास। इन्हीं कील्हदासजी की प्रवृत्ति रामभक्ति के साथ साथ योगाभ्यास की ओर भी हुई जिससे रामानंदजी की वैरागी परंपरा की एक शाखा में योगसाधना का भी समावेश हुआ। यह शाखा वैरागियों में 'तपसी शाखा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। कील्हदास के शिष्य द्वारकादास ने इस शाखा को पल्लवित किया। उनके संबंध में भक्तमाल में ये वाक्य हैं—

'अष्टांग जोग तन त्यागियो द्वारकादास, जानै दुनी'

जब कोई शाखा चल पड़ती है, तब आगे चलकर अपनी प्राचीनता सिद्ध करने के लिए वह बहुत सी कथाओं का प्रचार करती है। स्वामी रामानंदजी के बारह वर्ष तक योगसाधना करने की कथा इसी प्रकार की है जो वैरागियों की 'तपसी शाखा' में चली। किसी शाखा की प्राचीनता सिद्ध करने का प्रयत्न कथाओं की उद्भावना तक ही नहीं रह जाता। कुछ नए ग्रंथ भी संप्रदाय के मूल प्रवर्तक के नाम से प्रसिद्ध किए जाते हैं। स्वामी रामानंदजी के नाम से चलाए हुए ऐसे दो रद्दी ग्रंथ हमारे पास हैं—एक का नाम है योगचिंतामणि, दूसरे का रामरक्षा स्तोत्र। दोनों के कुछ नमूने देखिए—

(1)

विकट कटक रे भाई। काया चढ़ा न जाई॥
जहँ नाद बिंदु का हाथी। सतगुर ले चले साथी॥

unacademy

जहाँ है अष्टदल कमल फूला। हंसा सरोवर में भूला॥
शब्द तो हिरदय बसे, शब्द नयनों बसे,
शब्द की महिमा चार बेद गाई।
कहैं गुरु रामानंदजी, सतगुर दया करि मिलिया,
सत्य का शब्द सुनु रे भाई॥
सुरत नगर करै सयल। जिसमें है आत्मा का महल॥

(योगचिंतामणि से)

(2)

संध्यातारिणी सर्वेदुःख विदारिणी।

संध्या उच्चरै विघ्न टरै। पिंड प्राण कै रक्षा श्रीनाथ निरंजन करै। नाद नादं सुषुम्ना के साज साज्या। चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमनी पाँच मुद्रा सधंत साधुराजा।

डरे डुँगरे जले और थले बाटे घाटे औघट निरंजन निराकार रक्षा करे। बाघ बाघिनी का करो मुख काला। चौंसठ जोगिनी मारि कुटका किया, अखिल ब्रह्मांड तिहुँ लोक में दुहाई फिरिवा करै। दास रामानंद ब्रह्म चीन्हा, सोई निज तत्त्व ब्रह्मज्ञानी।

(रामरक्षा स्तोत्र से)

झाड़फूँक के काम के ऐसे-ऐसे स्तोत्र भी रामानंदजी के गले मढ़े गए हैं। स्तोत्र के आरंभ में जो 'संध्या' शब्द है नाथपंथ में उसका पारिभाषिक अर्थ है—'सुषुम्ना नाड़ी की संधि में प्राण का जाना' इसी प्रकार 'निरंजन भी गोरखपंथ में उस ब्रह्म के लिए एक रूढ़ शब्द है जिसकी स्थिति वहाँ मानी गई है जहाँ नाद और बिंदु दोनों का लय हो जाता है—

नादकोटि सहस्राणि बिंदुकोटि शतानि च।
सर्वे तत्र लयं योति यत्र देवो निरंजनः॥

'नाद' और 'बिंदु' क्या है, यह नाथपंथ के प्रपंच में दिखाया जा चुका है।[2]

सिखों के 'ग्रंथसाहब' में भी निर्गुण उपासना के दो पद रामानंद के मिलते हैं। एक यह है—

कहाँ जाइए हो घरि लागो रंग। मेरो चंचल मन भयो अपंग॥
जहाँ जाइए तहँ जल पषान। पूरि रहे हरि सब समान॥
वेद स्मृति सब मेल्हे जोइ। उहाँ जाइए हरि इहाँ न होइ॥
एक बार मन भयो उमंग। घसि चोवा चंदन चारि अंग॥
पूजत चाली ठाइँ ठाइँ। सो ब्रह्म बतायो गुरु आप माइँ॥
सतगुर मैं बलिहारी तोर। सकल विकल भ्रम जारे मोर॥
रामानंद रमै एक ब्रह्म। गुरु के एक सबद काटै कोटि क्रम्म॥

unacademy

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि ग्रंथ साहब में उद्धृत दोनों पद भी वैष्णव भक्त रामानंदजी के नहीं हैं, और किसी रामानंद के हों तो हो सकते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वास्तव में रामानंदजी के केवल दो संस्कृत ग्रंथ ही आज तक मिले हैं। 'वैष्णवमताब्जभास्कर' में रामानंदजी के शिष्य सुरसुरानंद ने नौ प्रश्न किए हैं जिनके उत्तर में रामतारक मंत्र की विस्तृत व्याख्या, तत्त्वोपदेश, अहिंसा का महत्त्व, प्रपत्ति, वैष्णवों की दिनचर्या, षोडशोपचारपूजन इत्यादि विषय हैं।

अर्चावतारों के चार भेद—स्वयं व्यक्त, दैव, सैद्ध और मानुष—करके कहा गया है कि वे प्रशस्त देशों (अयोध्या, मथुरा आदि) में श्री सहित सदा निवास करते हैं। जातिभेद, क्रियाकलाप आदि की अपेक्षा न करनेवाले भगवान् की शरण में सबको जाना चाहिए—

प्राप्तुं परा सिद्धिमकिंचनो जनो-द्विजादिरिच्छंछरणं हरिं ब्रजेत्।
परम् दयालु स्वगुणानपेक्षितक्रियाकलापादिकजातिभेदम्॥

गोस्वामी तुलसीदासजी—यद्यपि स्वामी रामानंदजी की शिष्यपरंपरा के द्वारा देश के बड़े भाग में रामभक्ति की पुष्टि निरंतर होती आ रही थी और भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थे, पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदासजी की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषाकाव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह कि रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक संदर्भ इन्हीं भक्तशिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरंभ हुआ।

unacademy

'शिवसिंहसरोज' में गोस्वामीजी के एक शिष्य बेनीमाधवदास कृत 'गोसाईंचरित्र' का उल्लेख है। इस ग्रंथ का कहीं पता न था। पर कुछ दिन हुए सहसा यह अयोध्या से निकल पड़ा। अयोध्या में एक अत्यंत निपुण दल है जो लुप्त पुस्तकों और रचनाओं को समय समय पर प्रकट करता है। कभी नंददास कृत तुलसी की वंदना का पद प्रकट होता है जिसमें नंददास कहते हैं—

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरु भ्राता पद बंदे।

× × ×

नंददास के हृदय नयन को खोलेउ सोई॥

कभी सूरदासजी द्वारा तुलसीदास की स्तुति का यह पद प्रकाशित होता है—

धन्य भाग्य मम संत सिरोमनि चरन कमल तकि आयउँ।
दया दृष्टि ते मम दिसि हेरेउ, तत्त्व स्वरूप लखायो।
कर्म उपासन ज्ञान जनित भ्रम संसय सूल नसायो॥[3]

इस पद के अनुसार सूरदास का 'कर्मउपासनज्ञानजनितभ्रम' वल्लभाचार्यजी ने नहीं तुलसीदासजी ने दूर किया था। सूरदासजी तुलसीदासजी से अवस्था में बहुत बड़े थे और उनसे पहले प्रसिद्ध भक्त हो गए थे, यह सब लोग जानते हैं।

ये दोनों पद 'गोसाईंचरित्र' के मेल में हैं, अतः मैं इन सबका उद्गम एक ही समझता हूँ। 'गोसाईंचरित्र' में वर्णित बहुत सी बातें इतिहास के सर्वथा विरुद्ध पड़ती हैं, यह बा. माताप्रसाद गुप्त अपने कई लेखों में दिखा चुके हैं। रामानंदजी की शिष्यपरंपरा के अनुसार देखें तो भी तुलसीदास के गुरु का नाम नरहर्यानंद और नरहर्यानंद के गुरु का नाम अनंतानंद (प्रिय शिष्य अनंतानंद हते। नरहर्यानंद सुनाम छते) असंगत ठहरता है। अनंतानंद और नरहर्यानंद दोनों रामानंदजी के बारह शिष्यों में थे। नरहरिदास को अलबत कुछ लोग अनंतानंद का शिष्य कहते हैं, पर भक्तमाल के अनुसार वे अनंतानंद के शिष्य श्रीरंग के शिष्य थे। गिरनार में योगाभ्यासी सिद्ध रहा करते हैं, 'तपसी शाखा' की यह बात भी गोसाईंचरित्र में आ गई है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि तिथि, वार आदि ज्योतिष की गणना से सब कुछ ठीक मिलाकर तथा तुलसी के संबंध में चली आती हुई सारी जनश्रुतियों का समन्वय करके सावधानी के साथ इसकी रचना हुई है, पर एक ऐसी पदावली इसके भीतर चमक रही है, जो इसे बिलकुल आजकल की रचना घोषित कर रही है। यह है 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्।' देखिए—

देखिन तिरषित दृष्टि तें सब जने, कीन्ही सही संकरम्।
दिव्याषर सो लिख्यो, पढ़े धुनि सुने, सत्यं, शिवं, सुंदरम्॥

यह पदावली अँगरेजी समीक्षा क्षेत्र में प्रचलित 'द ट्रथ्, द गुड, ऐंड द ब्यूटीफुल' का अनुवाद है, जिसका प्रचार पहले पहल ब्रह्मोसमाज में, फिर बँगला और हिन्दी की आधुनिक समीक्षाओं में हुआ, यह हम अपने 'काव्य में रहस्यवाद' के भीतर दिखा चुके हैं।

unacademy

उन्हें ए।

यह बात अवश्य है कि 'गोसाईंचरित्र' में जो वृत्त दिए गए हैं, वे अधिकतर वे ही हैं जो परंपरा से प्रसिद्ध चले आ रहे हैं।

गोस्वामीजी का एक और जीवन चरित्र, जिसकी सूचना 'मर्यादा' पत्रिका की ज्येष्ठ 1969 की संख्या में श्रीयुत् इंद्रदेव नारायणजी ने दी थी, उनके एक दूसरे शिष्य महात्मा रघुवरदासजी का लिखा 'तुलसीचरित' कहा जाता है। यह कहाँ तक प्रामाणिक है, नहीं कहा जा सकता। दोनों चरितों के वृत्तांतों में परस्पर बहुत कुछ विरोध है। बाबा बेनीमाधवदास के अनुसार गोस्वामीजी के पिता जमुना के किनारे दुबेपुरवा नामक गाँव के दूबे और मुखिया थे और पूर्वज पत्यौजा ग्राम से यहाँ आए थे। पर बाबा रघुवरदास के 'तुलसीचरित' में लिखा है कि सरवार में मझौली से तेईस कोस पर कसया ग्राम में गोस्वामीजी के प्रपितामह परशुराम मिश्र—जो गाना मिश्र थे—रहते थे। वे तीर्थाटन करते करते चित्रकूट पहुँचे और उसी ओर राजापुर में बस गए। उनके पुत्र शंकर मिश्र हुए। शंकर मिश्र के रुद्रनाथ मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र के मुरारि मिश्र हुए जिनके पुत्र तुलाराम ही आगे चलकर भक्तचूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदासजी हुए।

unacademy

दोनों चरितों में गोस्वामीजी का जन्म संवत् 1554 दिया हुआ है। बाबा बेनीमाधवदास की पुस्तक में तो श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथि भी दी हुई है। पर इस संवत् को ग्रहण करने से तुलसीदासजी की आयु 126-127 वर्ष आती है जो पुनीत आचरण के महात्माओं के लिए असंभव तो नहीं कही जा सकती। शिवसिंहसरोज में लिखा है कि गोस्वामीजी संवत् 1583 के लगभग उत्पन्न हुए थे। मिरजापुर के प्रसिद्ध रामभक्त और रामायणी पंडित रामगुलाम द्विवेदी भक्तों की जनश्रुति के अनुसार इनका जन्म संवत् 1589 मानते थे। इसी सबसे पिछले संवत् को ही डॉ. ग्रियर्सन ने स्वीकार किया है। इनका सरयूपारी ब्राह्मण होना तो दोनों चरितों में पाया जाता है और सर्वमान्य है। 'तुलसी परासर गोत दूबे पतिऔजा के' यह वाक्य भी प्रसिद्ध चला आता है और पं. रामगुलाम ने भी इसका समर्थन किया है। उक्त प्रसिद्धि के अनुसार गोस्वामीजी के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। माता के नाम के प्रमाण में रहीम का यह दोहा कहा जाता है–

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय॥

तुलसीदासजी ने कवितावली में कहा है कि 'मातु पिता जग जाइ तज्यौ बिधिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई।' इसी प्रकार विनयपंत्रिका में भी ये वाक्य हैं—'जनक जननी तज्यौ जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यौ अवडेरे' तथा 'तनुजन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिता हूँ।' इन वचनों के अनुसार यह जनश्रुति चल पड़ी कि गोस्वामीजी अभुक्तमूल में उत्पन्न हुए थे, इससे उनके माता पिता ने उन्हें त्याग दिया था। उक्त जनश्रुति के अनुसार गोसाईंचरित्र में लिखा है कि गोस्वामीजी जब उत्पन्न हुए तब पाँच वर्ष के बालक के समान थे और उन्हें पूरे दाँत भी थे। वे रोए नहीं, केवल 'राम' शब्द उनके मुँह से सुनाई पड़ा। बालक को राक्षस समझ पिता ने उसकी उपेक्षा की। पर माता ने उसकी रक्षा के लिए उद्विग्न होकर उसे अपनी एक दासी मुनिया को पालने पोसने को दिया और वह उसे लेकर अपनी ससुराल चली गई। पाँच वर्ष पीछे जब मुनिया भी मर गई तब राजापुर में बालक के पिता के पास संवाद भेजा गया, पर उन्होंने बालक को लेना स्वीकार न किया। किसी प्रकार बालक का निर्वाह कुछ दिन हुआ। अंत में बाबा नरहरिदास ने उसे अपने पास रख लिया और कुछ शिक्षा दीक्षा दी। इन्हीं गुरु से गोस्वामीजी राम कथा सुना करते थे। इन्हीं अपने गुरु बाबा नरहरिदास के साथ गोस्वामीजी काशी में आकर पंचगंगा घाट पर स्वामी रामानंदजी के स्थान पर रहने लगे। वहाँ पर एक परम विद्वान् महात्मा शेषसनातनजी रहते थे जिन्होंने तुलसीदासजी को वेद-वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि में प्रवीण कर दिया। 15 वर्ष तक अध्ययन करके गोस्वामीजी फिर अपनी जन्मभूमि राजापुर लौटे; पर वहाँ इनके परिवार में कोई नहीं रह गया था और घर भी गिर गया था।

यमुनापार के एक ग्राम के रहनेवाले भारद्वाजगोत्री एक ब्राह्मण यमद्वितीया को राजापुर में स्नान करने आए। उन्होंने तुलसीदासजी की विद्या, विनय और शील पर मुग्ध होकर अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी। इसी पत्नी के उपदेश से गोस्वामीजी का विरक्त होना और भक्ति की सिद्धि प्राप्त करना प्रसिद्ध है। तुलसीदासजी अपनी इस पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर वे बढ़ी नदी पार करके उससे जाकर मिले। स्त्री ने उस समय ये दोहे कहे—

लाज न लागत आपको दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्ममय देह मम तामे जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति॥

यह बात तुलसीदासजी को ऐसी लगी कि वे तुरंत काशी आकर विरक्त हो गए। इस वृत्तांत को प्रियादासजी ने भक्तमाल की अपनी टीका में दिया है और 'तुलसीचरित' और 'गोसाईंचरित्र' में भी इसका उल्लेख है।

गोस्वामीजी घर छोड़ने पर कुछ दिन काशी में, फिर काशी से अयोध्या जाकर रहे। उसके पीछे तीर्थयात्रा करने निकले और जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारका होते हुए बदरिकाश्रम गए। वहाँ से ये कैलाश और मानसरोवर तक निकल गए। अंत में चित्रकूट आकर ये बहुत दिनों तक रहे जहाँ अनेक संतों से इनकी भेंट हुई। इसके अनंतर

unacademy

आकर ये बहुत [illegible]

संवत् 1631 में अयोध्या जाकर इन्होंने रामचरितमानस का आरंभ किया और उसे 2 वर्ष 7 महीने में समाप्त किया। रामायण का कुछ अंश, विशेषतः किष्किधाकांड, काशी में रचा गया। रामायण समाप्त होने पर ये अधिकतर काशी में ही रहा करते थे। वहाँ अनेक शास्त्रज्ञ विद्वान् इनसे आकर मिला करते थे क्योंकि इनकी प्रसिद्धि सारे देश में हो चुकी थी। ये अपने समय के सबसे बड़े भक्त और महात्मा माने जाते थे। कहते हैं कि उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन सरस्वती से इनसे वाद हुआ था जिससे प्रसन्न होकर इनकी स्तुति में यह श्लोक उन्होंने कहा था—

आनंदकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमर भूषिता॥

गोस्वामीजी के मित्रों और स्नेहियों में नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराज मानसिंह, नाभाजी और मधुसूदन सरस्वती आदि कहे जाते हैं। 'रहीम' से इनसे समय समय पर दोहों में लिखा पढ़ी हुआ करती थी। काशी में इनके सबसे बड़े स्नेही और भक्त भदैनी के एक भूमिहार जमींदार टोडर थे जिनकी मृत्यु होने पर इन्होंने कई दोहे कहे हैं—

चार गाँव को ठाकुरो मन को महामहीप।
तुलसी या कलिकाल में अथए टोडर दीप॥

unacademy

तुलसी रामसनेह को सिर पर भारी भारु।
टोडर काँधा नहिं दियो, सब कहि रहे उतारु॥
रामधाम टोडर गए, तुलसी भए असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यहै जानि संकोच॥

गोस्वामीजी की मृत्यु के संबंध में लोग यह दोहा कहा करते हैं—

संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

पर बाबा बेनीमाधवदास की पुस्तक में दूसरी पंक्ति इस प्रकार है या कर दी गई है—

श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर।

यही ठीक तिथि है क्योंकि टोडर के वंशज अब तक इसी तिथि को गोस्वामीजी के नाम सीधा दिया करते हैं।

'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत' को लेकर लोग गोस्वामीजी का जन्मस्थान ढूँढ़ने एटा जिले के सोरों नामक स्थान तक सीधे पच्छिम दौड़े हैं। पहले पहल उस ओर इशारा स्व. लाला सीताराम ने (राजापुर के) अयोध्याकांड के स्वसंपादित संस्करण की भूमिका में दिया था। उसके बहुत दिन पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी और अनेक प्रकार के कल्पित प्रमाण सोरों को जन्मस्थान सिद्ध करने के लिए तैयार किए गए। सारे उपद्रव की जड़ है 'सूकर खेत' जो भ्रम में सोरों समझ लिया गया। 'सूकर छेत्र' गोंडे के जिले में सरजू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ आसपास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है।

जिन्हें भाषा की परख है उन्हें यह देखते देर न लगेगी कि तुलसीदासजी की भाषा में ऐसे शब्द, जो स्थान विशेष के बाहर नहीं बोले जाते हैं, केवल दो स्थानों के हैं—चित्रकूट के आसपास के और अयोध्या के आसपास के। किसी कवि की रचना में यदि किसी स्थानविशेष के भीतर ही बोले जानेवाले अनेक शब्द मिलें तो उस स्थान विशेष से कवि का निवास संबंध मानना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर यह बात मन में बैठ जाती है कि तुलसीदासजी का जन्म राजापुर में हुआ जहाँ उनकी कुमार अवस्था बीती। सरवरिया होने के कारण उनके कुल के तथा संबंधी अयोध्या, गोंडा, बस्ती के आसपास थे, जहाँ उनका आना जाना बराबर रहा करता था। विरक्त होने पर वे अयोध्या में ही रहने लगे थे। 'रामचरितमानस' में आए हुए कुछ शब्द और प्रयोग नीचे दिए जाते हैं जो अयोध्या के आसपास ही (बस्ती, गोंडा आदि कुछ भागों में) बोले जाते हैं—

माहुर = विष। **सरौं** = कसरत। **फहराना या फरहराना** = प्रफुल्लचित्त होना (सरौं करहिं पायक फहराई)। **फुर** = सच। **अनभल ताकना** = बुरा मनाना (जेहि राउर अति अनभल ताका)। **राउर, राउरेहि** = आपको (भलउ कहत दुख रउरेहि लागा)।

unacademy

रमा लहीं = रमा ने पाया (प्रथम पुरुष स्त्री, बहुवचन, उदा.-भरि जनम जे पाए न ते परितोष उमा रमा लही)। **कूटि** = दिल्लगी, उपहास।

इसी प्रकार ये शब्द चित्रकूट के आसपास तथा बघेलखंड में ही (जहाँ की भाषा पूरबी हिन्दी या अवधी ही है) बोले जाते हैं—

कुराय = वे गड्ढे जो करेल पोली जमीन में बरसात के कारण जगह जगह पड़ जाते हैं (काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाँव बझाऊ रे।—विनय.)।

सुआर = सूपकार, रसोइया।

ये शब्द और प्रयोग इस बात का पता देते हैं कि किन किन स्थानों की बोली गोस्वामीजी की अपनी थी। आधुनिक काल के पहले साहित्य या काव्य की सर्वमान्य व्यापक भाषा व्रज रही है, यह तो निश्चित है। भाषाकाव्य के परिचय के लिए प्रायः सारे उत्तर भारत के लोग बराबर इसका अभ्यास करते थे और अभ्यास द्वारा सुंदर रचना भी करते थे। व्रजभाषा में रीतिग्रंथ लिखनेवाले चिंतामणि, भूषण, मतिराम, दास इत्यादि अधिकतर कवि अवध के थे और व्रजभाषा के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। दासजी ने तो स्पष्ट व्यवस्था ही दी है कि 'व्रजभाषा हेतु व्रजवास ही न अनुमानौ'। पर पूरबी हिन्दी या अवधी के संबंध में यह बात नहीं है। अवधी भाषा में रचना करनेवाले

पर पूरबी हिन्दी या अवधी का राजा न हो सका। जितने कवि हुए हैं सब अवध या पूरब के थे। किसी पछाहीं कवि ने कभी पूरबी हिन्दी या अवधी पर ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं किया कि उसमें रचना कर सके। जो बराबर सोरों की पछाहीं बोली (व्रज) बोलता आया होगा वह 'जानकीमंगल' और 'पार्वतीमंगल' की-सी ठेठ अवधी लिखेगा, 'मानस' ऐसे महाकाव्य की रचना अवधी में करेगा और व्याकरण के ऐसे देशबद्ध प्रयोग करेगा जैसे ऊपर दिखाए गए हैं? भाषा के विचार में व्याकरण के रूपों का मुख्यतः विचार होता है।

भक्त लोग अपने को जन्मजन्मांतर से अपने आराध्य इष्टदेव का सेवक मानते हैं। इसी भावना के अनुसार तुलसी और सूर दोनों ने कथाप्रसंग के भीतर अपने को गुप्त या प्रकट रूप में राम और कृष्ण के समीप तक पहुँचाया है। जिस स्थल पर ऐसा हुआ है वहीं कवि के निवासस्थान का पूरा संकेत भी है। 'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड में वह स्थल देखिए जहाँ प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए राम जमुना पार करते हैं और भरद्वाज के द्वारा साथ लगाए हुए शिष्यों को विदा करते हैं। राम सीता तट पर के लोगों से बातचीत कर ही रहे हैं कि—

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुंज लघु बयस सुहावा॥
कवि अलषित गति बेष बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥
सजल नयन तन पुलक निज इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥

यह तापस एकाएक आता है। कब जाता है, कौन है, इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। बात यह है कि इस ढंग से कवि ने अपने को ही तापस रूप में राम के पास

पहुँचाया है और ठीक उसी प्रदेश में जहाँ के वे निवासी थे, अर्थात् राजापुर के पास।

सूरदास ने भी भक्तों की इस पद्धति का अवलंबन किया है। यह तो निर्विवाद है कि बल्लभाचार्यजी से दीक्षा लेने के उपरांत सूरदासजी गोवर्द्धन पर श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन किया करते थे। अपने सूरसागर के दशम् स्कंध के आरंभ में सूरदास ने श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए अपने को ढाढ़ी के रूप में नंद के द्वार पर पहुँचाया है—

नंद जू! मेरे मन आनंद भयो, हौं गोवर्द्धन तें आयो।
तुम्हरे पुत्र भयो मैं सुनि कै अति आतुर उठि धायो॥

×　　×

×

जब तुम मदनमोहन करि टेरौ, यह सुनि कै घर जाऊँ।
हौं तौ तेरे घर को ढाढ़ी, सूरदास मेरो नाऊँ॥

सबका सारांश यह है कि तुलसीदास का जन्मस्थान जो राजापुर प्रसिद्ध चला आता है वही, ठीक है।

एक बात की ओर और ध्यान जाता है। तुलसीदासजी रामानंद संप्रदाय की बैरागी परंपरा में नहीं जान पड़ते। उक्त संप्रदाय के अंतर्गत जितनी शिष्य परंपराएँ मानी जाती हैं उनमें तुलसीदासजी का नाम कहीं नहीं है। रामानंद परंपरा में सम्मिलित करने के लिए उन्हें नरहरिदास का शिष्य बताकर जो परंपरा मिलाई गई है वह कल्पित प्रतीत होती है। वे रामोपासक वैष्णव अवश्य थे, पर स्मार्त वैष्णव थे।

unacademy

कल्पित प्रतीत होता है। वे रामोपासक वैष्णव अवश्य थे, पर स्मार्त वैष्णव थे।

गोस्वामीजी के प्रादुर्भाव को हिन्दी काव्य क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिन्दी काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं में ही पहले पहल दिखाई पड़ा। वीरगाथाकाल के कवि अपने संकुचित क्षेत्र में काव्यभाषा के पुराने रूप को लेकर एक विशेष शैली की परंपरा निभाते आ रहे थे। चलती भाषा का संस्कार और समुन्नति उनके द्वारा नहीं हुई। भक्तिकाल में आकर भाषा के चलते रूप को समाश्रय मिलने लगा। कबीरदास ने चलती बोली में अपनी वाणी कही। पर वह बोली बेठिकाने की थी। उसका कोई नियत रूप न था। शौरसेनी, अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश का जो सामान्य रूप साहित्य के लिए स्वीकृत था उससे कबीर का लगाव न था। उन्होंने नाथपंथियों की 'सधुक्कड़ी भाषा' का व्यवहार किया जिसमें खड़ी बोली के बीच राजस्थानी और पंजाबी का मेल था। इसका कारण यह था कि मुसलमानों की बोली पंजाबी या खड़ी बोली हो गई थी और निर्गुणपंथी साधुओं का लक्ष्य मुसलमानों पर भी प्रभाव डालने का था। अतः उनकी भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों का भी मनमाना प्रयोग मिलता है। उनका कोई साहित्यिक लक्ष्य न था और वे पढ़े लिखे लोगों से दूर ही दूर अपना उपदेश सुनाया करते थे।

साहित्य की भाषा में, जो वीरगाथा काल के कवियों के हाथ में बहुत कुछ अपने पुराने रूप में ही रही, प्रचलित भाषा के संयोग से नया जीवन सगुणोपासक

कवियों द्वारा प्राप्त हुआ। भक्तवर सूरदासजी व्रज की चलती भाषा को परंपरा से चली आती हुई काव्यभाषा के बीच पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करके साहित्यिक भाषा को लोकव्यवहार के मेल में लाए। उन्होंने परंपरा से चली आती हुई काव्यभाषा का तिरस्कार न करके उसे एक नया चलता रूप दिया। सूरसागर को ध्यानपूर्वक देखने से उसमें क्रियाओं के कुछ पुराने रूप, कुछ सर्वनाम (जैसे जासु तासु, जेहि तेहि) तथा कुछ प्राकृत के शब्द पाए जाएँगे। सारांश यह कि वे परंपरागत काव्यभाषा को बिलकुल अलग करके एकबारगी नई चलती बोली लेकर नहीं चले। भाषा का एक शिष्ट सामान्य रूप उन्होंने रखा जिसका व्यवहार आगे चलकर बराबर कविता में होता आया। यह तो हुई व्रज भाषा की बात। इसके साथ ही पूरबी बोली या अवधी भी साहित्य निर्माण की ओर अग्रसर हो चुकी थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अवधी की सबसे पुरानी रचना ईश्वरदास की **'सत्यवती कथा'** है।[1] आगे चलकर 'प्रेममार्गी शाखा' के मुसलमान कवियों ने अपनी कहानियों के लिए अवधी भाषा ही चुनी। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने समय में काव्यभाषा के दो रूप प्रचलित पाए—एक व्रज और दूसरी अवधी। दोनों में उन्होंने समान अधिकार के साथ रचनाएँ कीं।

unacademy

भाषा पद्य के स्वरूप को लेते हैं तो गोस्वामीजी के सामने कई शैलियाँ प्रचलित थीं जिनमें से मुख्य ये हैं—(क) वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, (ख) विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति, (ग) गंग आदि भाटों की कवित्त सवैया पद्धति, (घ) कबीरदास की नीति संबंधी बानी की दोहा पद्धति जो अपभ्रंश से चली आती थी और (ङ) ईश्वरदास की दोहे, चौपाईवाली प्रबंध पद्धति। इस प्रकार काव्यभाषा के दो रूप और रचना की पाँच मुख्य शैलियाँ साहित्य क्षेत्र में गोस्वामीजी को मिलीं। तुलसीदासजी के रचनाविधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल से सबके सौंदर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्यक्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए। हिन्दी कविता के प्रेमी मात्र जानते हैं कि उनका व्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। व्रजभाषा का जो माधुर्य हम सूरसागर में पाते हैं वही माधुर्य और भी संस्कृत रूप में हम गीतावली और कृष्णगीतावली में पाते हैं। ठेठ अवधी की जो मिठास हमें जायसी के पद्मावत में मिलती है वही जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, बरवैरामायण और रामललानहछू में हम पाते हैं। यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं कि न तो सूर का अवधी पर अधिकार था और न जायसी का व्रजभाषा पर।

प्रचलित रचना शैलियों पर भी उनका इसी प्रकार का पूर्ण अधिकार हम पाते हैं।

(क) वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति पर इनकी रचना थोड़ी है पर इनकी निपुणता पूर्ण रूप से प्रदर्शित करती है; जैसे—

कतहुँ विटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करक्खत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर वारिद जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥
डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुरविमान हिमभानु, संघटित होत परस्पर।
चौके विरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंडधुनि, जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥

(ख) विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति पर इन्होंने बहुत विस्तृत और बड़ी सुंदर रचना की है। सूरदासजी की रचना में संस्कृत की 'कोमलकांत पदावली' और अनुप्रासों की वह विचित्र योजना नहीं है जो गोस्वामीजी की रचना में है। दोनों भक्त शिरोमणियों की रचना में यह भेद ध्यान देने योग्य है और इस पर ध्यान अवश्य जाता है। गोस्वामीजी की रचना अधिक संस्कृतगर्भित है। पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि इनके पदों में शुद्ध देशभाषा का माधुर्य नहीं है। इन्होंने दोनों प्रकार की मधुरता का

बहुत ही अनूठा मिश्रण किया है। विनयपत्रिका के प्रारंभिक स्तोत्रों में जो संस्कृत पदविन्यास है उसमें गीतगोविंद के पदविन्यास से इस बात की विशेषता है कि वह विषम है और रस के अनुकूल कहीं कोमल और कहीं कहीं कर्कश देखने में आता है। हृदय के विविध भावों की व्यंजना गीतावली के मधुर पदों में देखने योग्य है। कौशल्या के सामने भरत अपनी आत्मग्लानि की व्यंजना किन शब्दों में करते हैं, देखिए—

जौ हौं मातुमते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं?
क्यौं हौं आजु होत सुचि सपथनि, कौन मानिहै साँची?
महिमा मृगी कौन सुकृती की खल बच बिसिषन्ह बाँची?

इसी प्रकार चित्रकूट में राम के सम्मुख जाते हुए भरत की दशा का भी सुंदर चित्रण है—

बिलोके दूरि तें दोउ बीर।
मन अगहुँड़ तन पुलक सिथिल भयो, नयन नलिन भरे नीर।
गड़त गोड़ मनो सकुच पंक महँ, कढ़त प्रेमबल धीर॥

'गीतावली' की रचना गोस्वामीजी ने सूरदासजी के अनुकरण पर की है। बाललीला के कई एक पद ज्यों के त्यों सूरसागर में भी मिलते हैं, केवल 'राम'

'श्याम' का अंतर है। लंकाकांड तक तो कथा की अनेकरूपता के अनुसार मार्मिक स्थलों का जो चुनाव हुआ है वह तुलसी के सर्वथा अनुरूप है। पर उत्तरकांड में जाकर सूर पद्धति के अतिशय अनुकरण के कारण उनका गंभीर व्यक्तित्व तिरोहित सा हो गया है। जिस रूप में राम को उन्होंने सर्वत्र लिया है, उनका भी ध्यान उन्हें नहीं रह गया। 'सूरदास' में जिस प्रकार गोपियों के साथ श्रीकृष्ण हिंडोला झूलते हैं, होली खेलते हैं, वही करते राम भी दिखाए गए हैं। इतना अवश्य है कि सीता की सखियों और पुरनारियों का राम की ओर पूज्यभाव ही प्रकट होता है। राम की नखशिख शोभा का अलंकृत वर्णन भी सूर की शैली पर बहुत से पदों में लगातार चला गया है। सरयूतट के इस आनंदोत्सव को आगे चलकर रसिक लोग क्या रूप देंगे इसका ख्याल गोस्वामीजी को न रहा।

(ग) गंग आदि भाटों की कवित्त, सवैया पद्धति पर भी इसी प्रकार सारा रामचरित गोस्वामीजी कह गए हैं जिसमें नाना रसों का सन्निवेश अत्यंत विशद रूप में और अत्यंत पुष्ट और स्वच्छ भाषा में मिलता है। नाना रसमयी रामकथा तुलसीदासजी ने अनेक प्रकार की रचनाओं में कही है। कवितावली में रसानुकूल शब्दयोजना बड़ी सुंदर है। जो तुलसीदासजी ऐसी कोमल भाषा का व्यवहार करते हैं—

राम को रूप निहारत जानकि, कंकन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही, पल डारति नाहीं॥

गोरो गरूर गुमान भरो यह, कौसिक, छोटो सो ढोटो है काको?

जल को गए लक्खन, हैं लरिका, परिखौ, पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥

वे ही वीर और भयानक के प्रसंग में ऐसी शब्दावली का व्यवहार करते हैं।

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड वीर,
धाए जातुधान, हनुमान लियो घेरि कै।
महाबल पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट,
जहाँ तहाँ पटके लंगूर फेरि फेरि कै।
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,
कहैं तुलसीस 'राखि राम की सौं' टेरि कै।
ठहर ठहर परे, कहरि कहरि उठे,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै॥

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल लाल मानौ,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।

unacademy

कैधों व्योम वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है॥

(घ) नीति के उपदेश की सूक्ति पद्धति पर बहुत से दोहे रामचरितमानस और दोहावली में मिलेंगे जिनमें बड़ी मार्मिकता से और कहीं कहीं बड़े रचनाकौशल से व्यवहार की बातें कही गई हैं और भक्तिप्रेम की मर्यादा दिखाई गई है—

रीझि आपनी बूझि पर, खीझि विचार विहीन।
ते उपदेस न मानहीं, मोह महोदधि मीन।
लोगन भलो मनाव जो, भलो होन की आस।
करत गगन को गेंडुआ, सो सठ तुलसीदास।
की तोहि लागहि राम प्रिय, की तु राम प्रिय होहि।
दुइ महँ रुचै जो सुगम सोइ, कीबे तुलसी तोहि॥

(ङ) जिस प्रकार चौपाई, दोहे के क्रम से जायसी ने अपना पद्मावत नाम का प्रबंधकाव्य लिखा उसी क्रम पर गोस्वामीजी ने अपना परम प्रसिद्ध काव्य रामचरितमानस, जो लोगों के हृदय का हार बनता चला आता है, रचा। भाषा वही अवधी है, केवल पदविन्यास का भेद है। गोस्वामीजी शास्त्रपारंगत विद्वान् थे अतः उनकी शब्दयोजना साहित्यिक और संस्कृतगर्भित है। जायसी में केवल ठेठ अवधी का माधुर्य है, पर गोस्वामीजी की रचना में संस्कृत की कोमल पदावली का भी बहुत ही मनोहर मिश्रण है। नीचे दी हुई कुछ चौपाइयों में दोनों की भाषा का भेद स्पष्ट देखा जा सकता है—

जब हुँत कहिगा पंखि संदेसी । सुनिउँ कि आवा है परदेसी॥
तब हुँत तुम्ह बिन रहे न जीऊ । चातक भयउँ कहत पिउ पीउ॥
भइउँ बिरह जरि कोइलि कारी । डार डार जो कूकि पुकारी॥

—जायसी

अमिय मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भवरुज परिवारू॥
सुकृत संभु तनु बिमल बिभूती । मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी । किए तिलक गुन गन बस करनी॥

—तुलसी

सारांश यह कि हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामीजी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं।

अब हम गोस्वामीजी के वर्णित विषय के विस्तार का विचार करेंगे। यह विचार करेंगे कि मानव जीवन की कितनी अधिक दशाओं का सन्निवेश उनकी कविता के भीतर है। इस संबंध में हम यह पहले ही कह देना चाहते हैं कि अपने दृष्टिविस्तार के कारण ही तुलसीदासजी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदयमंदिर में पूर्ण प्रेमप्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं। भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी

को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को। और कवि जीवन का कोई एक पक्ष लेकर चले हैं—जैसे, वीरकाल के कवि उत्साह को; भक्तिकाल के दूसरे कवि प्रेम और ज्ञान को; अलंकारकाल के कवि दांपत्य प्रणय या शृंगार को। पर इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौंदर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है।

पहले कहा जा चुका है कि निर्गुण धारा के संतों की बानी में किस प्रकार लोकधर्म की अवहेलना छिपी हुई थी। सगुण धारा की भारतीय पद्धति के भक्तों में कबीर, दादू आदि के लोकधर्म विरोधी स्वरूप को यदि किसी ने पहचाना तो गोस्वामीजी ने। उन्होंने देखा कि उनके वचनों से जनता की चित्तवृत्ति में ऐसे घोर विकार की आशंका है जिससे समाज विशृंखल हो जाएगा, उसकी मर्यादा नष्ट हो जायगी। जिस समाज से ज्ञानसंपन्न शास्त्रज्ञ विद्वानों, अन्याय अत्याचार के दमन में तत्पर वीरों, पारिवारिक कर्तव्यों का पालन करनेवाले उच्चाशय व्यक्तियों, पतिप्रेम परायणा सतियों, पितृभक्ति के कारण अपना सुखसर्वस्व त्यागनेवाले सत्पुरुषों, स्वामी की सेवा में मर मिटनेवाले सच्चे सेवकों, प्रजा का पुत्रवत् पालन करनेवाले शासकों आदि के प्रति श्रद्धा और प्रेम का भाव उठ जायगा उसका कल्याण कदापि नहीं हो सकता।

गोस्वामीजी को निर्गुणपंथियों की बानी में लोकधर्म की उपेक्षा का भाव स्पष्ट दिखाई पड़ा। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि बहुत से अनधिकारी और अशिक्षित वेदांत के कुछ चलते शब्दों को लेकर, बिना उनका तात्पर्य समझे, यों ही 'ज्ञानी' बने हुए, मूर्ख जनता को लौकिक कर्तव्यों से विचलित करना चाहते हैं और मूर्खतामिश्रित अहंकार की वृद्धि कर रहे हैं। इसी दशा को लक्ष्य करके उन्होंने इस प्रकार के वचन कहे हैं—

श्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ संजुत विरति विवेक।
नहि परिहरहिं विमोहबस कल्पहि पंथ अनेक॥
साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान॥
बादहिं शूद्र द्विजन सन हम तुमतें कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाटि॥

इसी प्रकार योगमार्ग से भक्तिमार्ग का पार्थक्य गोस्वामीजी ने बहुत स्पष्ट शब्दों में बताया है। योगमार्ग ईश्वर को अंतस्थ मानकर अनेक प्रकार की अंतस्साधनाओं में प्रवृत्त करता है। सगुण भक्तिमार्गी ईश्वर को भीतर और बाहर सर्वत्र मानकर उनकी कला का दर्शन खुले हुए व्यक्त जगत् के बीच करता है। वह ईश्वर को केवल मनुष्य के क्षुद्र घट के भीतर ही नहीं मानता। इसी से गोस्वामीजी कहते हैं—

unacademy

अंतर्जामिहु तें बड़ बाहिरजामी हैं राम, जो नाम लिए तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिए तें॥

'घट के भीतर' कहने से गुह्य या रहस्य की धारणा फैलती है जो भक्ति के सीधे स्वाभाविक मार्ग में बाधा डालती है। घट के भीतर साक्षात्कार करने की बात कहने वाले प्रायः अपने को गूढ़ रहस्यदर्शी प्रगट करने के लिए सीधी सादी बात को भी रूपक बाँधकर और टेढ़ी पहेली बनाकर कहा करते हैं। पर इस प्रकार के दुराव छिपाव की प्रवृत्ति को गोस्वामीजी भक्ति का विरोधी मानते हैं। सरलता या सीधेपन को वे भक्ति का नित्य लक्षण कहते हैं—मन की सरलता, वचन की सरलता और कर्म की सरलता, तीनों को—

सूधे मन, सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि, रघुबर प्रेम प्रसूति॥

वे भक्ति के मार्ग को ऐसा नहीं मानते जिसे 'लखै कोई बिरलै'। वे उसे ऐसा सीधा सादा स्वाभाविक मार्ग बताते हैं जो सबके सामने दिखाई पड़ता है। वह संसार में सबके लिए ऐसा ही सुलभ है जैसे अन्न और जल—

निगम अगम, साहब सुगम, राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत, सुलभ सबहि जग माँह॥

अभिप्राय यह कि जिस हृदय से भक्ति की जाती है वह सबके पास है। हृदय की जिस पद्धति से भक्ति की जाती है वह भी वही है जिससे माता पिता की भक्ति, पुत्र कलत्र का प्रेम किया जाता है। इसी से गोस्वामीजी चाहते हैं कि—

unacademy

यहि जग महँ जहँ लगि या तन की प्रीति प्रतीति सगाई।
सो सब तुलसीदास प्रभु ही सों होहु सिमिटि इक ठाई॥

नाथपंथी रमते जोगियों के प्रभाव से जनता अंधी भेड़ बनी हुई तरह तरह की करामातों को साधुता का चिह्न मानने लगी थी और ईश्वरोन्मुख साधना को कुछ बिरले रहस्यदर्शी लोगों का ही काम समझने लगी थी। जो हृदय सबके पास होता है वही अपनी स्वाभाविक वृत्तियों द्वारा भगवान् की ओर लगाया जा सकता है, इस बात पर परदा सा डाल दिया गया था। इससे हृदय रहते भी भक्ति का सच्चा स्वाभाविक मार्ग लोग नहीं देख पाते थे। यह पहले कहा जा चुका है कि नाथपंथ का हठयोग मार्ग हृदयपक्ष शून्य है।[5] रागात्मिका वृत्ति से उसका कोई लगाव नहीं। अतः रमते जोगियों की रहस्यभरी बानियाँ सुनते सुनते जनता के हृदय में भक्ति की सच्ची भावना दब गई थी, उठने ही नहीं पाती थी। लोक की इसी दशा को लक्ष्य करके गोस्वामीजी को कहना पड़ा था कि—

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।

गोस्वामीजी की भक्तिपद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ

unacademy

उसका सामंजस्य है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्यलक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतने ही का जितना ध्यान के लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।

प्राचीन भारतीय भक्तिमार्ग के भीतर भी उन्होंने बहुत सी बढ़ती हुई बुराइयों को रोकने का प्रयत्न किया। शैवों और वैष्णवों के बीच बढ़ते हुए विद्वेष को उन्होंने अपनी सामंजस्य व्यवस्था द्वारा बहुत कुछ रोका जिसके कारण उत्तरी भारत में वह वैसा भयंकर रूप न धारण कर सका जैसा उसने दक्षिण में किया। यहीं तक नहीं, जिस प्रकार उन्होंने लोकधर्म और भक्तिसाधना को एक में सम्मिलित करके दिखाया उसी प्रकार कर्म, ज्ञान और उपासना के बीच भी सामंजस्य उपस्थित किया। 'मानस' के बालकांड में संत समाज का जो लंबा रूपक है वह इस बात को स्पष्ट रूप में सामने लाता है। भक्ति की चरम सीमा पर पहुँचकर भी लोकपक्ष उन्होंने नहीं छोड़ा। लोकसंग्रह का भाव उनकी भक्ति का एक अंग था। कृष्णोपासक भक्तों में इस अंग की कमी थी। उनके बीच उपास्य और उपासक के संबंध की ही गूढ़ातिगूढ़ व्यंजना हुई, दूसरे प्रकार के लोकव्यापक नाना संबंधों के कल्याणकारी सौंदर्य की प्रतिष्ठा नहीं हुई। यही कारण है कि इनकी भक्तिरसभरी वाणी जैसी मंगलकारिणी मानी गई वैसी और किसी की नहीं। आज राजा से रंक तक के घर में गोस्वामीजी का रामचरितमानस विराज रहा है और प्रत्येक प्रसंग पर इनकी चौपाइयाँ कही जाती हैं।

unacademy

अपनी सगुणोपासना का निरूपण गोस्वामीजी ने कई ढंग से किया है। रामचरितमानस में नाम और रूप दोनों को ईश्वर की उपाधि कहकर वे उन्हें उसकी अभिव्यक्ति मानते हैं—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
नाम रूप गति अकथ कहानी । समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥

दोहावाली में भक्ति की सुगमता बड़े ही मार्मिक ढंग से गोस्वामीजी ने इस दोहे के द्वारा सूचित की है—

की तोहि लागहिं राम प्रिय, की तु रामप्रिय होहि।
दुई महँ रुचै जो सुगम सोइ, कीबे तुलसी तोहि॥

इसी प्रकार रामचरितमानस के उत्तरकांड में उन्होंने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को कहीं अधिक सुसाध्य और आशुफलदायिनी कहा है।

रचनाकौशल, प्रबंधपटुता, सहृदयता इत्यादि सब गुणों का समाहार हमें रामचरितमानस में मिलता है। पहली बात जिस पर ध्यान जाता है, वह है कथाकाव्य के सब अवयवों का उचित समीकरण। कथाकाव्य या प्रबंधकाव्य के भीतर इतिवृत्त, वस्तु व्यापार वर्णन, भावव्यंजना और संवाद, ये अवयव होते हैं। न तो अयोध्यापुरी

की शोभा, बाललीला, नखशिख, जनक की वाटिका, अभिषेकोत्सव इत्यादि के वर्णन बहुत लंबे होने पाए हैं, न पात्रों के संवाद, न प्रेम, शोक आदि भावों की व्यंजना। इतिवृत्त की शृंखला भी कहीं से टूटती नहीं है।

दूसरी बात है कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान। अधिक विस्तार हमें ऐसे ही प्रसंगों का मिलता है जो मनुष्यमात्र के हृदय को स्पर्श करनेवाले हैं—जैसे, जनक की वाटिका में राम सीता का परस्पर दर्शन, राम वन गमन, दशरथ मरण, भरत की आत्मग्लानि, वन के मार्ग में स्त्री पुरुषों की सहानुभूति, युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगना इत्यादि।

तीसरी बात है प्रसंगानुकूल भाषा। रसों के अनुकूल कोमल, कठोर पदों की योजना तो निर्दिष्ट रूढ़ि ही है। उसके अतिरिक्त गोस्वामीजी ने इस बात का भी ध्यान रखा है कि किस स्थल पर विद्वानों या शिक्षितों की संस्कृतमिश्रित भाषा रखनी चाहिए और किस स्थल पर ठेठ बोली। घरेलू प्रसंग समझकर कैकेयी और मंथरा के संवाद में उन्होंने ठेठ बोली और स्त्रियों में विशेष चलते प्रयोगों का व्यवहार किया है। अनुप्रास की ओर प्रवृत्ति तो सब रचनाओं में स्पष्ट लक्षित होती है।

चौथी बात है शृंगार की शिष्ट मर्यादा के भीतर बहुत ही व्यंजक वर्णन।

जिस धूमधाम से 'मानस' की प्रस्तावना चली है उसे देखते ही ग्रंथ के महत्त्व का आभास मिल जाता है। उससे साफ झलकता है कि तुलसीदासजी अपने ही तक दृष्टि रखनेवाले भक्त न थे, संसार को भी दृष्टि फैलाकर देखनेवाले भक्त थे। जिस व्यक्त जगत् के बीच उन्हें भगवान् के रामरूप की कला का दर्शन कराना था, पहले चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसके अनेक रूपात्मक स्वरूप को उन्होंने सामने रखा है। फिर उसके भले बुरे पक्षों की विषमता देख दिखाकर अपने मन का यह कहकर समाधान किया है—

सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जगजलधि अगाधू॥

इसी प्रस्तावना के भीतर तुलसी ने अपनी उपासना के अनुकूल विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का आभास भी यह कहकर दिया है—

सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

जगत् को केवल राममय न कहकर उन्होंने 'सियाराममय' कहा है। सीता प्रकृतिस्वरूपा हैं और राम ब्रह्म हैं; प्रकृति अचित् पक्ष है और ब्रह्म चित् पक्ष। अतः पारमार्थिक सत्ता चिदचिद्विशिष्ट है, यह स्पष्ट झलकता है। चित् और अचित् वस्तुतः एक ही हैं, इसका निर्देश उन्होंने—

गिरा अर्थ, जल बीचि सम कहियत भिन्न, न भिन्न।
बंदौ सीताराम पद जिनहि परम प्रिय खिन्न॥

कहकर किया है।

'रामचरितमानस' के भीतर कहीं कहीं घटनाओं के थोड़े ही हेर फेर तथा

unacademy

स्वकल्पित संवादों के समावेशों के अतिरिक्त अपनी ओर से छोटी मोटी घटनाओं या प्रसंगों की नई कल्पना तुलसीदासजी ने नहीं की है। 'मानस' में उनका ऐसा न करना तो उनके उद्देश्य के अनुसार बहुत ठीक है। राम के प्रामाणिक चरित द्वारा वे जीवन भर बना रहनेवाला प्रभाव उत्पन्न करना चाहते थे, और काव्यों के समान केवल अल्पस्थायी रसानुभूति मात्र नहीं। 'ये प्रसंग तो केवल तुलसी द्वारा कल्पित हैं' यह धारणा उन प्रसंगों का कोई स्थायी प्रभाव श्रोताओं या पाठकों पर न जमने देती। पर गीतावली तो प्रबंध काव्य न थी। उसमें तो सूर के अनुकरण पर वस्तु व्यापार वर्णन का बहुत विस्तार है। उसके भीतर छोटे छोटे नूतन प्रसंगों की उद्भावना का पूरा अवकाश था, फिर भी कल्पित घटनात्मक प्रसंग नहीं पाए जाते। इससे यही प्रतीत होता है कि उनकी प्रतिभा अधिकतर उपलब्ध प्रसंगों को लेकर चलने वाली थी, नए नए प्रसंगों की उद्भावना करनेवाली नहीं। उनकी कल्पना वस्तुस्थिति को ज्यों की त्यों लेकर उसके मार्मिक स्वरूपों के उद्घाटन में प्रवृत्त होती थी। गोपियों को छकाने वाली कृष्णलीला के अंतर्गत छोटी मोटी कथा के रूप में कुछ दूर तक मनोरंजक और कुतूहलप्रद ढंग से चलनेवाले नाना प्रसंगों की जो नवीन उद्भावना सूरसागर में पाई जाती है वह तुलसी के किसी ग्रंथ में नहीं मिलती।

'रामचरितमानस' में तुलसी केवल कवि रूप में ही नहीं, उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं। उपदेश उन्होंने किसी न किसी पात्र के मुख से कराए हैं, इससे काव्यदृष्टि से यह कहा जा सकता है कि वे उपदेश पात्र के स्वभावचित्रण के साधनरूप हैं। पर बात यह नहीं है। वे उपदेश उपदेश के लिए ही हैं।

unacademy

उद्भावना पूरतागर न पाइ गाना ए वह पुराना ने [illegible]

'रामचरितमानस' में तुलसी केवल कवि रूप में ही नहीं, उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं। उपदेश उन्होंने किसी न किसी पात्र के मुख से कराए हैं, इससे काव्यदृष्टि से यह कहा जा सकता है कि वे उपदेश पात्र के स्वभावचित्रण के साधनरूप हैं। पर बात यह नहीं है। वे उपदेश उपदेश के लिए ही हैं।

गोस्वामीजी के रचे बारह ग्रंथ प्रसिद्ध हैं जिनमें पाँच बड़े और सात छोटे हैं। दोहावली, कवित्तरामायण, गीतावली, रामचरितमानस, विनयपत्रिका बड़े ग्रंथ हैं तथा रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवैरामायण, वैराग्यसंदीपनी, कृष्णगीतावली और रामाज्ञाप्रश्नावली छोटे। पं. रामगुलाम द्विवेदी ने, जो एक प्रसिद्ध भक्त और रामायणी हो गए हैं, इन्हीं बारह ग्रंथों को गोस्वामीजी कृत माना है। पर शिवसिंहसरोज में दस और ग्रंथों के नाम गिनाए गए हैं, यथा—रामसतसई, संकटमोचन, हनुमद्बाहुक, रामसलाका, छंदावली, छप्पय रामायण, कड़खा रामायण, रोला रामायण, झूलना रामायण और कुंडलिया रामायण। इनमें से कई एक तो मिलते ही नहीं। हनुमद्बाहुक को पं. रामगुलामजी ने कवितावली के ही अंतर्गत लिया है। रामसतसई में सात सौ से कुछ अधिक दोहे हैं जिनमें से डेढ़ सौ के लगभग दोहावली के ही हैं। अधिकांश दोहे उसमें कुतूहलवर्धक, चातुर्य लिए हुए और क्लिष्ट हैं। यद्यपि दोहावली में भी कुछ दोहे इस ढंग के हैं, पर गोस्वामीजी ऐसे गंभीर, सहृदय और कलामर्मज्ञ महापुरुष के ऐसे पद्यों का इतना बड़ा ढेर लगाना समझ में नहीं आता। जो हो, बाबा बेनीमाधवदास के नाम पर प्रणीत चरित में भी रामसतसई का उल्लेख हुआ है।

कुछ ग्रंथों के निर्माण के संबंध में जो जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं, उनका उल्लेख

unacademy

भी यहाँ आवश्यक है। कहते हैं कि बरवै रामायण गोस्वामीजी ने अपने स्नेही मित्र अब्दुर्रहीम खानखाना के कहने पर उनके बरवा (बरवै नायिकाभेद) को देखकर बनाया था। कृष्णगीतावली वृंदावन की यात्रा के अवसर पर बनी कही जाती है। पर बाबा बेनीमाधवदास के 'गोसाईंचरित' के अनुसार रामगीतावली और कृष्णगीतावली दोनो ग्रंथ चित्रकूट में उस समय के कुछ पीछे लिखे गए जब सूरदासजी उनसे मिलने वहाँ गए थे। गोस्वामीजी के एक मित्र पं. गंगाराम ज्योतिषी काशी में प्रह्लाद घाट पर रहते थे। रामाज्ञाप्रश्न उन्हीं के अनुरोध से बना माना जाता है। हनुमानबाहुक से तो प्रत्यक्ष है कि वह बाहुओं में असह्य पीड़ा उठने के समय रचा गया था। विनयपत्रिका के बनने का कारण यह कहा जाता है कि जब गोस्वामीजी ने काशी में राममक्ति की गहरी धूम मचाई तब एक दिन कलिकाल तुलसीदासजी को प्रत्यक्ष आकर धमकाने लगा और उन्होंने राम के दरबार में रखने के लिए वह पत्रिका या अर्जी लिखी।

गोस्वामीजी की सर्वांगपूर्ण काव्यकुशलता का परिचय आरंभ में ही दिया जा चुका है। उनकी साहित्यमर्मज्ञता, भावुकता और गंभीरता के संबंध में इतना और जान लेना भी आवश्यक है कि उन्होंने रचनानैपुण्य का भद्दा प्रदर्शन कहीं नहीं किया है और न शब्द चमत्कार आदि के खेलवाड़ों में वे फँसे हैं। अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं, अपनी अलग चमक दमक दिखाते हुए नहीं। कहीं कहीं लंबे लंबे सांग रूपक बाँधने में अवश्य उन्होंने एक भद्दी परंपरा का अनुसरण किया

है। दोहावली के कुछ दोहों के अतिरिक्त और सर्वत्र भाषा का प्रयोग उन्होंने भावों और विचारों को स्पष्ट रूप में रखने के लिए किया है, कारीगरी दिखाने के लिए नहीं। उनकी सी भाषा की सफाई और किसी कवि में नहीं। सूरदास में ऐसे वाक्य मिलते हैं जो विचारधारा आगे बढ़ाने में कुछ भी योग देते नहीं पाए जाते, केवल पादपूर्त्यर्थ ही लाए हुए जान पड़ते हैं। इसी प्रकार तुकांत के लिए शब्द भी तोड़े मरोड़े गए हैं। पर गोस्वामीजी की काव्यरचना अत्यंत प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है, एक भी शब्द फालतू नहीं। खेद है कि भाषा की यह सफाई पीछे होनेवाले बहुत कम कवियों में रह गई। सब रसों की सम्यक् व्यंजना उन्होंने की है, पर मर्यादा का उल्लंघन कहीं नहीं किया है। प्रेम और शृंगार का ऐसा वर्णन जो बिना किसी लज्जा और संकोच के सबके सामने पढ़ा जा सके, गोस्वामीजी का ही है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिन्दी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।

2. स्वामी अग्रदास—रामानंदजी के शिष्य अनंतानंद और अनंतानंद के शिष्य कृष्णदास पयहारी थे। कृष्णदास पयहारी के शिष्य अग्रदासजी थे। इन्हीं अग्रदासजी के शिष्य भक्तमाल के रचयिता प्रसिद्ध नाभादासजी थे। गलता (राजपूताना) की प्रसिद्ध गद्दी का उल्लेख पहले हो चुका है।[6] वहीं ये भी रहा करते थे और संवत् 1632 के लगभग वर्तमान थे। इनकी बनाई चार पुस्तकों का पता है—

1. हितोपदेश उपखाणा बावनी
2. ध्यानमंजरी
3. रामध्यानमंजरी
4. कुंडलिया।

इनकी कविता उसी ढंग की है जिस ढंग की कृष्णोपासक नंददासजी की। उदाहरण के लिए यह पद्य देखिए—

कुंडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा।
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाए।
मुख पंकज के निकट मनो अलि छौना आए॥

इनका एक पद भी देखिए—

पहरे राम तुम्हारे सोवत । मैं मतिमंद अंध नहिं जोवत॥
अपमारग मारग महि जान्यो । इंद्री पोषि पुरुषारथ मान्यो॥
औरनि के बल अनत प्रकार । अगरदास के राम अधार॥

3. नाभादासजी—ये उपर्युक्त अग्रदासजी के शिष्य, बड़े भक्त और साधुसेवी थे। संवत् 1657 के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदासजी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ भक्तमाल संवत् 1642 के पीछे बना और संवत् 1769 में प्रियादासजी ने उसकी टीका लिखी। इस ग्रंथ में 200 भक्तों के चमत्कारपूर्ण चरित्र 316 छप्पयों में लिखे गए हैं। इन चरित्रों में पूर्ण जीवनवृत्त नहीं है, केवल भक्ति की महिमासूचक बातें दी गई हैं। इनका उद्देश्य भक्तों के प्रति जनता में पूज्यबुद्धि का प्रचार जान पड़ता है। यह उद्देश्य बहुत अंशों में सिद्ध भी हुआ। आज उत्तरी भारत के गाँव गाँव में साधुवेषधारी पुरुषों को शास्त्रज्ञ विद्वानों और पंडितों से कहीं बढ़कर जो सम्मान और पूजा प्राप्त है, वह बहुत कुछ भक्तों की करामातों और चमत्कारपूर्ण वृत्तांतों के सम्यक् प्रचार से।

नाभाजी को कुछ लोग डोम बताते हैं, कुछ क्षत्रिय। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे एक बार गोस्वामी तुलसीदासजी से मिलने काशी गए। पर उस समय गोस्वामीजी ध्यान में थे, इससे न मिल सके। नाभाजी उसी दिन वृंदावन चले गए। ध्यान भंग होने पर गोस्वामीजी को बड़ा खेद हुआ और वे तुरंत नाभाजी से मिलने वृंदावन चल दिए। नाभाजी के यहाँ वैष्णवों का भंडारा था जिसमें गोस्वामीजी बिना बुलाए जा पहुँचे। गोस्वामीजी यह समझकर कि नाभाजी ने मुझे अभिमानी न समझा हो, सबसे दूर एक किनारे बुरी जगह बैठ गए। नाभाजी ने जानबूझकर उनकी ओर ध्यान न दिया। परसने के समय कोई पात्र न मिलता था जिसमें गोस्वामीजी को खीर दी जाती। यह देखकर गोस्वामीजी एक साधु का जूता उठा लाए और बोले, 'इससे सुंदर पात्र मेरे लिए और क्या होगा?' इस पर नाभाजी ने उठकर उन्हें गले

लगा लिया और गद्‌गद हो गए। ऐसा कहा जाता है कि तुलसी संबंधी अपने प्रसिद्ध छप्पय के अंत में पहले नाभाजी ने कुछ चिढ़कर यह चरण रखा था—'कलि कुटिल जीव तुलसी भए, वालमीकि अवतार धरि।' यह वृत्तांत कहाँ तक ठीक है, नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गोस्वामीजी खानपान का विचार रखनेवाले स्मार्त वैष्णव थे। तुलसीदासजी के संबंध में नाभाजी का प्रसिद्ध छप्पय यह है—

त्रेता काव्य निबंध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन॥
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरनरसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भयो॥

अपने गुरु अग्रदास के समान इन्होंने भी रामभक्ति संबंधी कविता की है। व्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और पद्य रचना में अच्छी निपुणता थी। रामचरित संबंधी इनके पदों का एक छोटा सा संग्रह अभी थोड़े दिन हुए प्राप्त हुआ है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने दो 'अष्टयाम' भी बनाए—एक व्रजभाषा गद्य में, दूसरा रामचरितमानस की शैली पर दोहा चौपाइयों में। दोनों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

unacademy

गद्य

तब श्री महाराजकुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिरि श्री राजाधिराज जू को जोहार करिके श्री महेंद्रनाथ दशरथ जू के निकट बैठत भए।

पद्य

अवधपुरी की शोभा जैसी । कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी॥
रचित कोट कलधौत सुहावन । बिबिध रंग मति अति मन भावन॥
चहुँ दिसि विपिन प्रमोद अनूपा । चतुरवीस जोजन रस रूपा॥
सुदिसि नगर सरजू सरि पावनि । मनिमय तीरथ परम सुहावनि॥
बिगसे जलज भृंग रस भूले । गुंजत जल समूह दोउ कूले॥
परिखा प्रति चहुँदिसि लसति, कंचन कोट प्रकास।
बिबिध भाँति नग जगमगत, प्रति गोपुर पुर पास॥

4. **प्राणचंद चौहान**—संस्कृत में रामचरित संबंधी कई नाटक हैं जिनमें कुछ तो नाटक के साहित्यिक नियमानुसार हैं और कुछ केवल संवाद रूप में होने के कारण नाटक कहे गए हैं। इसी पिछली पद्धति पर संवत् 1667 में इन्होंने रामायण

महानाटक लिखा। रचना का ढंग नीचे उद्धृत अंश से ज्ञात हो सकता है—

कातिक मास पच्छ उजियारा। तीरथ पुन्य सोम कर वारा॥
ता दिन कथा कीन्ह अनुमाना। शाह सलेम दिलीपति थाना॥
संवत् सोरह सै सत साठा। पुन्य प्रगास पाय भय नाठा॥
जो सारद माता कर दाया। बरनौं आदि पुरुष की माया॥
जेहि माया कह मुनि जग भूला। ब्रह्मा रहे कमल के फूला॥
निकसि न सक माया कर बाँधा। देषहु कमलनाल के राँधा॥
आदिपुरुष बरनौं केहि भाँती। चाँद सुरज तहँ दिवस न राती॥
निरगुन रूप करै सिव ध्याना। चार बेद गुन जेरि बखाना॥
तीनों गुन जानै संसारा। सिरजै पालै भंजनहारा॥
श्रवन बिना सो अस बहुगुना। मन में होइ सु पहले सुना॥
देषै सब पै आहि न आँषी। अंधकार चोरी के साषी॥
तेहि कर दहुँ को करै बषाना। जिहि कर मर्म बेद नहिं जाना॥
माया सींव भो कोउ न पारा। शंकर पँवरि बीच होइ हारा॥

5. **हृदयराम**—ये पंजाब के रहनेवाले और कृष्णदास के पुत्र थे। इन्होंने संवत् 1680 में संस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर भाषा हनुमन्नाटक लिखा जिसकी कविता बड़ी सुंदर और परिमार्जित है। इसमें अधिकतर कवित्त और सवैयों में बड़े अच्छे संवाद हैं। पहले कहा जा चुका है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने समय की सारी प्रचलित काव्यपद्धतियों पर रामचरित का गान किया। केवल रूपक या नाटक के ढंग पर उन्होंने कोई रचना नहीं की। गोस्वामीजी के समय से ही उनकी ख्याति के साथ साथ रामभक्ति की तरंगें भी देश के भिन्न भिन्न भागों में उठ चली थीं। अतः उस काल के भीतर ही नाटक के रूप में कई रचनाएँ हुई जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध हृदयराम का हनुमन्नाटक हुआ।

नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

देखन जौ पाऊँ तौ पठाऊँ जमलोक, हाथ
दूजो न लगाऊँ, वार करौं एक कर को।
मीजि मारौं उर ते उखारि भुजदंड, हाड़,
तोरि डारौं बर अवलोकि रघुबर को॥
कासों राग द्विज को, रिसात भहरात राम,
अति थहरात गात लागत है धर को।
सीता को संताप मेटि प्रगट प्रताप कीनों,
को है वह आप चाप तोर्‌यो जिन हर को॥

---

unacademy

जानकी को मुख न बिलोक्यों ताते कुंडल,
न जानत हौं, वीर पायँ छुवै रघुराई के।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे,
ताते कंकन न देखे, बोल कह्यो सतभाइ के॥
पाँयन के परिबे को जाते दास लछमन
यातें पहिचानत है भूषन जे पायँ के।
बिछुआ है एई, अरु झाँझर हैं एई जुग
नूपुर हैं, तेई राम जानत जराइ के॥

सातों सिंधु, सातों लोक, सातों रिषि हैं ससोक,
सातों रबि घोरे, थोरे देखे न डरात मैं।
सातों दीप, सातों ईति काँप्यई करत और
सातों मत रात दिन प्रान हैं न गात मैं॥
सातों चिरजीव बरराइ उठैं बार बार,
सातों सुर हाय हाय होत दिन रात मैं।
सातहूँ पताल काल सबद कराल, राम
भेदे सात ताल, चाल परी सात सात मैं॥

एहो हनू! कह्यौ श्री रघुबीर कछू सुधि है सिय की छिति माँही?
है प्रभु लंक कलंक बिना सुबसै तहँ रावन बाग की छाँहीं॥
जीवति है? कहिबेई को नाथ, सु क्यों न मरी हमतें बिछुराहीं।
प्रान बसै पद पंकज में जम आवत है पर पावत नाहीं॥

रामभक्ति का एक अंग आदि रामभक्त हनुमानजी की उपासना भी हुई। स्वामी रामानंदजी कृत हनुमानजी की स्तुति का उल्लेख हो चुका है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने हनुमान की वंदना बहुत स्थलों पर की है। 'हनुमानबाहुक' तो केवल हनुमानजी को ही संबोधन करके लिखा गया है। भक्ति के लिए किसी पहुँचे हुए भक्त का प्रसाद भी भक्तिमार्ग में अपेक्षित होता है। संवत् 1696 में रायमल्ल पांडे ने 'हनुमच्चरित्र' लिखा था। गोस्वामीजी के पीछे भी कई लोगों ने रामायणें लिखीं, पर वे गोस्वामीजी की रचनाओं के सामने प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकीं। ऐसा जान पड़ता है कि गोस्वामीजी की प्रतिभा का प्रखर प्रकाश डेढ़ सौ वर्ष तक ऐसा छाया रहा कि रामभक्ति की और रचनाएँ उसके सामने ठहर न सकीं। विक्रम की 19वीं और 20वीं शताब्दी में अयोध्या के महंत बाबा रामचरणदास, बाबा रघुनाथदास, रीवाँ के महाराज रघुराज सिंह आदि ने रामचरित संबंधी विस्तृत रचनाएँ कीं जो सर्वप्रिय हुईं। इस काल में रामभक्ति विषयक कविता बहुत कुछ हुई।

रामभक्ति की काव्यधारा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें सब प्रकार की रचनाएँ हुईं, उसके द्वारा कई प्रकार की रचनापद्धतियों को उत्तेजना मिली। कृष्णोपासी कवियों ने मुक्तक के एक विशेष अंग गीतकाव्य की ही पूर्ति की, पर रामचरित को लेकर अच्छे अच्छे प्रबंधकाव्य रचे गए।

तुलसीदासजी के प्रसंग में यह दिखाया जा चुका है कि रामभक्ति में भक्ति का पूर्ण स्वरूप विकसित हुआ है। प्रेम और श्रद्धा अर्थात् पूज्यबुद्धि दोनों के मेल से भक्ति की निष्पत्ति होती है। श्रद्धा धर्म की अनुगामिनी है। जहाँ धर्म का स्फुरण दिखाई पड़ता है वहीं श्रद्धा टिकती है। धर्म ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति है, उस स्वरूप की क्रियात्मक अभिव्यक्ति है, जिसका आभास अखिल विश्व की स्थिति में मिलता है। पूर्ण भक्त व्यक्त जगत् के बीच सत् की इस सर्वशक्तिमयी प्रवृत्ति के उदय का, धर्म की इस मंगलमयी ज्योति के स्फुरण का साक्षात्कार चाहता रहता है। इसी ज्योति के प्रकाश में सत् के अनंत रूप सौंदर्य की भी मनोहर झाँकी उसे मिलती है। लोक में जब कभी वह धर्म के स्वरूप को तिरोहित या आच्छादित देखता है तब मानो भगवान् उसकी दृष्टि से—उसकी खुली हुई आँखों के सामने से—ओझल हो जाते हैं और वह वियोग की आकुलता का अनुभव करता है। फिर जब अधर्म का अंधकार फाड़कर धर्मज्योति अमोघ शक्ति के साथ साथ फूट पड़ती है तब मानो उसके प्रिय भगवान् का मनोहर रूप सामने आ जाता और वह पुलकित हो उठता है। भीतर का 'चित्त' जब बाहर 'सत्' का साक्षात्कार कर पाता है तब 'आनंद' का आविर्भाव होता है और 'सदानंद' की अनुभूति होती है।

यह है उस सगुण भक्तिमार्ग का पक्ष जो भगवान् के अवतार को लेकर चलता है और जिसका पूर्ण विकास तुलसी की रामभक्ति में पाया जाता है। 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी ने लोक में फैले अधर्म, अनाचार, अत्याचार आदि का भीषण चित्र खींचकर भगवान् से अपना सत् स्वरूप, धर्मसंस्थापक स्वरूप व्यक्त करने की प्रार्थना की है। उन्हें दृढ़ विश्वास है कि धर्मस्वरूप भगवान् की कला का कभी न कभी दर्शन होगा। अतः वे यह भावना करके पुलकित हो जाते हैं कि सत्स्वरूप का लोकव्यक्त प्रकाश हो गया, रामराज्य प्रतिष्ठित हो गया और चारों ओर फिर मंगल छा गया—

रामराज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत विजई है॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब, सुकृत सेन हारत जितई है॥

जो भक्तिमार्ग श्रद्धा के अवयव को छोड़कर केवल प्रेम को ही लेकर चलेगा, धर्म से उसका लगाव न रह जायगा.। वह एक प्रकार से अधूरा रहेगा। शृंगारोपासना, माधुर्य भाव आदि की ओर उसका झुकाव होता जायगा और धीरे धीरे उसमें 'गुह्य, रहस्य' आदि का भी समावेश होगा। परिणाम यह होगा कि भक्ति के बहाने विलासिता और इंद्रियासक्ति की स्थापना होगी। कृष्णभक्ति शाखा कृष्ण भगवान् के धर्मस्वरूप को—लोकरक्षक और लोकरंजक स्वरूप को—छोड़कर केवल मधुर स्वरूप और प्रेमलक्षणा

unacademy

भक्ति की सामग्री लेकर चली। इससे धर्म सौंदर्य के आकर्षण से वह दूर पड़ गई। तुलसीदासजी ने भक्ति को अपने पूर्ण रूप में, श्रद्धा प्रेम समन्वित रूप में, सबके सामने रखा और धर्म या सदाचार को उसका नित्यलक्षण निर्धारित किया।

अत्यंत खेद की बात है कि इधर कुछ दिनों से एक दल इस रामभक्ति को भी शृंगारी भावनाओं में लपेटकर विकृत करने में जुट गया है। तुलसीदासजी के प्रसंग में हम दिखा आए हैं कि कृष्णभक्त सूरदासजी की शृंगारी रचना का कुछ अनुकरण गोस्वामीजी की 'गीतावली' के उत्तरकांड में दिखाई पड़ता है पर वह केवल आनंदोत्सव तक रह गया है। इधर आकर कृष्णभक्तिशाखा का प्रभाव बहुत बढ़ा। विषयवासना की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण कुछ दिनों से रामभक्ति मार्ग के भीतर भी शृंगारी भावना का अनर्गल प्रवेश हो रहा है। इस शृंगारी भावना के प्रवर्तक थे रामचरितमानस के प्रसिद्ध टीकाकार जानकीघाट (अयोध्या) के रामचरणदास जी, जिन्होंने पति पत्नी भाव की उपासना चलाई। इन्होंने अपनी शाखा का नाम 'स्वसुखी शाखा' रखा। स्त्रीवेष धारण करके पति 'लाल साहब' (यह खिताब राम को दिया गया है) से मिलने के लिए सोलह शृंगार करना, सीता की भावना सपत्नी रूप में करना आदि इस शाखा के लक्षण हुए। रामचरणदासजी ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक नवीन कल्पित ग्रंथ प्राचीन बताकर अपनी शाखा में फैलाए, जैसे—लोमशसंहिता, हनुमत्संहिता, अमर रामायण, भुशुंडि रामायण, महारामायण (5 अध्याय), कोशलखंड, रामनवरत्न, महारासोत्सव सटीक (संवत् 1904 में प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ में छपा)।

'कोशलखंड' में राम की रासलीला, विहार आदि के अश्लील वृत्त कल्पित किए गए हैं और कहा गया है कि रासलीला तो वास्तव में राम ने की थी। रामावतार में 99 रास वे कर चुके थे। एक ही शेष था जिसके लिए उन्हें फिर कृष्ण रूप में अवतार लेना पड़ा। इस प्रकार विलास क्रीड़ा में कृष्ण से कहीं अधिक राम को बढ़ाने की होड़ लगाई गई। गोलोक में जो नित्य रासलीला होती रहती है उससे कहीं बढ़कर साकेत में हुआ करती है। वहाँ की नर्तकियों की नामावली में रंभा, उर्वशी आदि के साथ साथ राधा और चंद्रावली भी गिना दी गई हैं।

रामचरणदास की इस शृंगारी उपासना में चिरान छपरा के जीवारामजी ने थोड़ा हेरफेर किया। उन्होंने पति पत्नी भावना के स्थान पर 'सखीभाव' रखा और अपनी शाखा का नाम 'तत्सुखी' शाखा रखा। इसी 'सखीभाव' की उपासना का खूब प्रचार लक्ष्मण किला (अयोध्या) वाले युगलानन्यशरण ने किया। रीवाँ के महाराज रघुराजसिंह इन्हें बहुत मानते थे और इन्हीं की सम्मति से उन्होंने चित्रकूट में 'प्रमोदवन' आदि कई स्थान बनवाए। चित्रकूट की भावना वृंदावन के रूप में की गई और वहाँ के कुंज भी ब्रज के से क्रीड़ाकुंज माने गए । इस रसिक पंथ का आजकल अयोध्या में बहुत जोर है और वहाँ के बहुत से मंदिरों में अब राम की 'तिरछी चितवन' और 'बाँकी अदा' के गीत गाए जाने लगे हैं। इस पंथ के लोगों का उत्सव प्रति

वर्ष चैत्र कृष्ण नवमी को वहाँ होता है। ये लोग सीताराम को 'युगलसरकार' कहा करते हैं और अपना आचार्य 'कृपानिवास' नामक एक कल्पित व्यक्ति को बतलाते हैं जिसके नाम पर एक 'कृपानिवास पदावली' संवत् 1901 में छपी (प्रिंटिंग प्रेस लखनऊ)। इसमें अनेक अश्लील पद हैं, जैसे—

1. **नीबी करषत बरजति प्यारी।**
   रसलंपट संपुट कर जोरत, पद परसत पुनि लै बलिहारी (पृ. 138)
2. **पिय हँसि रस रस कंचुकि खोलैं।**
   चमकि निवारति पानि लाड़िली, मुरक मुरक मुख बोलैं।

ऐसी ही एक और पुस्तक 'श्रीरामावतार भजन तरंगिणी' इन लोगों की ओर से निकली है, जिसका एक भजन देखिए—

हमरे पिय ठाढ़े सरजू तीर।
छोड़ि लाज मैं जाय मिली जहँ खड़े लखन के वीर॥
मृदु मुसकाय पकरि कर मेरो खैंचि लियो तब चीर॥
झाऊ वृक्ष की झाड़ी भीतर करन लगे रति धीर॥

भगवान् राम के दिव्य पुनीत चरित्र के कितने घोर पतन की कल्पना इन लोगों के द्वारा हुई है। यह दिखाने के लिए इतना बहुत है। लोकपावन आदर्श का ऐसा ही बीभत्स विपर्यय देखकर चित्त क्षुब्ध हो जाता है। रामभक्ति शाखा के साहित्य का अनुसंधान करनेवालों को सावधान करने के लिए ही इस 'रसिक शाखा' का यह थोड़ा सा विवरण दे दिया गया है। 'गुह्य', 'रहस्य', 'माधुर्य भाव' इत्यादि के समावेश से किसी भक्तिमार्ग की यही दशा होती है। गोस्वामीजी ने शुद्ध, सात्विक और खुले रूप में जिस रामभक्ति का प्रकाश फैलाया था, वह इस प्रकार विकृत की जा रही है।

unacademy

पाण्डेय & पाण्डेय

unacademy

सगुणधारा [रामभक्ति शाखा]

- आलवार भक्तों में शठकोप को रामभक्ति का प्रथम कवि माना जाता है। इनकी पुस्तक 'सहस्त्रगीत' में राम की उपासना का उल्लेख है।
- सातवें आलवार कुलशेखर भी राम के अनन्य भक्त थे।
- 'श्री सम्प्रदाय' के आदि आचार्य रंगनाथ मुनि को रामभक्ति परम्परा का प्रथम आचार्य माना जाता है।
- 'श्री सम्प्रदाय' में विष्णु और लक्ष्मी की उपासना मान्य है।

unacademy

- रामानुजाचार्य ने 'अद्वैत वेदान्त' का खण्डन कर 'विशिष्टाद्वैतवाद' की स्थापना की जिसके अनुसार ब्रह्म के ही अंश जगत के सारे प्राणी हैं।
- आलवार शठकोप के पाँच पीढ़ी के पीछे रामानुजाचार्य हुए।
- रामानुजाचार्य को शेष या लक्ष्मण का अवतार माना जाता है।
- 'श्री सम्प्रदाय' की प्रधान गद्दी तोताद्रि में स्थापित है।
- रामानुजाचार्य की 14वीं या 15वीं शिष्य-परम्परा में सुप्रसिद्ध स्वामी रामानन्द हुए।
- हिन्दी में **रामकाव्य के पुरस्कर्ता रामानन्द** माने जाते हैं।
- हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"मध्य युग की समग्र स्वाधीन चिन्ता के गुरु रामानन्द ही थे।"
- रामानन्द के गुरु का नाम राघवानंद था।
- हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामानन्द को आकाश धर्मा गुरु कहा है।
- राघवानन्द ने उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रवर्तन किया परन्तु इसे प्रतिष्ठित और प्रसारित रामानन्द ने किया।
- रामानन्द 14वीं शती में वर्तमान थे। इनके रचित प्रमुख ग्रन्थ हैं—(1) वैष्णवमताब्ज भास्कर, (2) श्री रामार्चन पद्धति, (3) योगचिंतामणि, (4) रामरक्षास्तोत्र, (5) आनन्दभाष्य आदि।
- रामानन्द रचित प्रमुख काव्य पंक्ति निम्नांकित है—

  (1) आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की।
  जाके बल भर ते महि कांपै। रोग सोग जाकी सिमा न चांपै॥

  (2) कहाँ जाइए हो धरि लागो रंग। मेरो चंचल मन भयो अपंग॥
- रामानन्द ने 'रामावत सम्प्रदाय' की स्थापना की। इस सम्प्रदाय के लोग 'वैरागी' नाम से प्रसिद्ध हुए।
- रामानन्द कृत 'वैष्णवमताब्जभास्कर' में उनके शिष्य सुरसुरानंद ने नौ प्रश्न किए हैं जिनके उत्तर में रामतारक मंत्र की विस्तृत व्याख्या, अहिंसा का महत्व इत्यादि विषय है।
- रामानन्द के 12 शिष्य थे। आचार्य शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं रामकुमार वर्मा के अनुसार ये निम्नलिखित हैं—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	हजारी प्रसाद द्विवेदी	डॉ० रामकुमार वर्मा
अनन्तानन्द	आशानन्द	अनन्तानन्द
सुखानन्द	सुखानन्द	सुखानन्द
सुरसुरानन्द	सुरसुरानन्द	सुरेश्वरानन्द
नरहर्यानन्द	परमानन्द	नरहरियानन्द
भावानन्द	भवानंद	भावानन्द
पीपा	पीपा (राजपूत)	योगानन्द
कबीरदास	कबीर (जुलाहा)	पीपा
सेन	सेना (नाई)	कबीर
धना	धन्ना (जाट)	सेन

unacademy

रैदास	रैदास (चमार)	धना
पद्मावती	महानन्द	रैदास
सुरसरी	श्री आनन्द	पद्मावती

- अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयहारी सर्वप्रथम गलता (अजमेर राज्य) में रामानन्द सम्प्रदाय की गद्दी स्थापित की।
- रामानन्दी सम्प्रदाय में गलता को उत्तर भारत का 'उत्तर तोताद्रि' कहा जाता है।
- गलता में पहले नाथपंथी योगियों का अधिकार था।
- अजमेर के राजा पृथ्वीराज पयहारीजी के शिष्य बने। पयहारी के दो प्रसिद्ध शिष्य हुए—(1) अग्रदास और (2) कील्हदास।
- कील्हदास ने रामभक्ति में योगाभ्यास का मेल कर एक 'तपसी शाखा' की स्थापना की।
- कील्हदास के शिष्य द्वारकादास थे। इनके सम्बन्ध में नाभादास ने भक्तमाल में लिखा है—"अष्टांग जोग तन त्यागियो द्वारकादास, जानै दुनी"
- अग्रदास ने रामभक्ति परम्परा में रसिक भाव का समावेश कर 'रसिक सम्प्रदाय' की स्थापना की।
- रसिक सम्प्रदाय के प्रमुख कवि निम्न हैं—(1) बालकृष्ण 'बाल अली', (2) रसमाला, (3) रामशरण 'प्रेमकली', (4) प्रयागदास, (5) रामगुलाम द्विवेदी, (6) रीवाँ नरेश महाराज रघुराज सिंह।

रीवाँ नरेश महाराज रघुराज सिंह।

- अग्रदास ने अपनी गद्दी जयपुर के पास रैवास में स्थापित किया। रसिक सम्प्रदाय में इन्हें 'अग्रअली' भी कहा जाता है।
- अग्रदास द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ निम्नलिखित है—

पुस्तक	विषयवस्तु
हितोपदेश उपखाणा बावनी	
ध्यान मंजरी	रसिकोपासना का सिद्धान्त ग्रन्थ
रामध्यानमंजरी	
कुंडलिया	नीतिपरक
अष्टयाम या रामाष्टयाम	संस्कृत भाषा में रचित सीतावल्लभ राम की दैनिक लीला का चित्रण

- अग्रदास के शिष्य नाभादास जी माने जाते हैं।
- विष्णुदास ग्वालियर नरेश डूंगरेन्द्र के राजकवि थे। इनके द्वारा लिखे ग्रन्थ निम्नांकित है—(1) महाभारत कथा, (2) रूक्मिणी मंत्र, (3) स्वर्गारोहण, (4) रामायण कथा।
- विष्णुदास कृत 'रामायण कथा' रामकथा सम्बन्धी हिन्दी का प्रथम प्रबन्ध काव्य है।
- ईश्वरदास ने 'सत्यवती कथा' (1501 ई०), 'भरत मिलाप' और 'अंगदपैज' नामक ग्रन्थों की रचना की।
- गोस्वामी तुलसीदास रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका सामान्य विवरण निम्नांकित है—

जन्म-मृत्यु	माता-पिता	पत्नी	दीक्षा गुरु	शिक्षा गुरु
1532-1623 ई०	आत्माराम दूबे-हुलसी	रत्नावली	नरहर्यानन्द	शेष सनातन

❑ तुलसीदास के जन्म स्थान के विषय में मतभेद है, जो निम्न है–

सूकर खेत (सोरों) (जिला एटा)
- लाला सीताराम
- गौरीशंकर द्विवेदी
- हजारी प्रसाद द्विवेदी
- रामनरेश त्रिपाठी
- रामदत्त भारद्वाज
- गणपतिचन्द्र गुप्त

राजापुर (जिला बाँदा)
- बेनीमाधव दास
- महात्मा रघुवर दास
- शिव सिंह सेंगर
- रामगुलाम द्विवेदी
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

❑ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तुलसीदास को 'स्मार्त वैष्णव' मानते हैं।

❑ आचार्य शुक्ल के अनुसार 'हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरम्भ' गोस्वामी तुलसीदास द्वारा हुआ।

❑ तुलसीदास के महत्त्व के सन्दर्भ में विद्वानों की कही गई उक्तियाँ निम्न हैं–

विद्वान	प्रमुख कथन
नाभादास	कलिकाल का वाल्मीकि।
स्मिथ	मुगलकाल का सबसे महान व्यक्ति।
ग्रियर्सन	बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोक-नायक।
मधुसूदन सरस्वती	आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसी तरुः। कवितामंजरी यस्य रामभ्रमर भूषिता॥
रामचन्द्र शुक्ल	इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवदभजन का उपदेश करती है दूसरी ओर लोक पक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है।
रामचन्द्र शुक्ल	यह एक कवि ही हिन्दी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।
रामचन्द्र शुक्ल	तुलसीदासजी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदय मन्दिर में पूर्ण प्रेम-प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं।
हजारीप्रसाद द्विवेदी	भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो।
रामविलास शर्मा	जातीय कवि।
अमृतलाल नागर	मानस का हंस।

❑ गोस्वामी तुलसीदास रामानुजाचार्य के 'श्री सम्प्रदाय' और विशिष्टाद्वैतवाद से प्रभावित थे। इनकी भक्ति भावना 'दास्य भाव' की थी।

Unacademy

❑ गोस्वामी तुलसीदास की गुरु परम्परा का क्रम इस प्रकार है—
राघवानन्द → रामानन्द → अनन्तानन्द → नरहर्यानंद (नरहरिदास) → तुलसीदास

❑ 'रत्नावली' के निम्न कथन पर तुलसीदास ने वैराग्य धारण किया—

"लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्म मय देह मम तामे जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्री राम महँ होति न तौ भवभीति॥"

❑ गोस्वामी तुलसीदास के स्नेही मित्रों में नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराज मानसिंह, नाभादास, मधुसूदन सरस्वती और टोडरमल का नाम प्रसिद्ध है।

❑ टोडर की मृत्यु पर तुलसीदास ने कई दोहे लिखे थे जो निम्न है—

"चार गाँव को ठाकुरो मन को महामहीप।
तुलसी या कलिकाल में अथए टोडर दीप॥
रामधाम टोडर गए, तुलसी भए असोच।
जियबो गीत पुनीत बिनु, यहै जानि संकोच॥"

❑ रहीमदास ने तुलसी के सन्दर्भ में निम्न दोहा लिखा है—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय। —तुलसीदास
गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय॥ —रहीमदास

❑ गोस्वामी तुलसीकृत 12 ग्रन्थों को ही प्रामाणिक माना जाता है। इसमें 5 बड़े और 7 छोटे हैं।

❑ डॉ० उदायभानु सिंह के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास की रचनाएँ काल क्रमानुसार निम्नलिखित हैं—

(1) वैराग्य संदीपनी	सं० 1626-27
(2) रामाज्ञा प्रश्न (दोहावली रामायण)	सं० 1627-28
(3) रामललानहछू	सं० 1628-29
(4) जानकी मंगल	सं० 1629-30
(5) रामचरित मानस	सं० 1631
(6) पार्वती मंगल	सं० 1643
(7) कृष्ण गीतावली	सं० 1643-60
(8) गीतावली (पदावली रामायण)	सं० 1630-70
(9) विनय पत्रिका (विनयावली, रामगीतावली)	सं० 1631-79
(10) दोहावली	सं० 1626-80
(11) बरवै रामायण (बरवा)	सं० 1630-80
(12) कवितावली या कवित्तावली (हनुमानबाहुक समेत)	सं० 1631-80

❑ तुलसी की पाँच लघु कृतियों—'वैराग्य संदीपनी', 'रामलला नहछू', 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल' और 'बरवै रामायण' को 'पंचरत्न' कहा जाता है।

❑ कृष्णदत्त मिश्र ने अपनी पुस्तक 'गौतम चन्द्रिका' में तुलसीदास की रचनाओं में 'अष्टांगयोग' का उल्लेख किया है। ये आठ अंग निम्न हैं—(1) रामगीतावली

unacademy

(2) पदावली, (3) कृष्ण गीतावली, (4) बरवै, (5) दोहावली, (6) सुगुनमाला, (7) कवितावली और (8) सोहिलोमंगल।

- तुलसीदास की प्रथम रचना 'वैराग्य संदीपनी' तथा अन्तिम रचना 'कवितावली' को माना जाता है। 'कवितावली' के परिशिष्ट में 'हनुमानबाहुक' भी संलग्न है। किन्तु अधिकांश विद्वान 'रामलला नहछू' को प्रथम कृति मानते हैं।
- गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न है—

पुस्तक	काव्यरूप	भाषा	प्रयुक्त छंद	छंद सं०	मुख्य रस	काण्ड (सर्ग)
वैराग्य संदीपनी	मुक्तक	ब्रजभाषा	दोहा-सोरठा			
रामाज्ञा प्रश्न	मुक्तक	अवधी	दोहा			
रामलला नहछू	प्रबन्ध	ठेठ अवधी	सोहर छंद			
जानकी मंगल	प्रबन्ध	अवधी	सोहर (हंसगति)	216		
रामचरितमानस	प्रबन्ध	अवधी	दोहा-चौपाई	1074 दोहा	भक्तिरस	7 काण्ड
पार्वती मंगल	प्रबन्ध	अवधी	मंगल, हरि-गीतिका	164		
कृष्णगीतावली	गीतिकाव्य	ब्रजभाषा		61		
गीतावली	गीतिकाव्य	ब्रजभाषा			वात्सल्य भक्ति	7 काण्ड
विनय पत्रिका	गीतिकाव्य	ब्रजभाषा		279	भक्तिरस	
दोहावली	मुक्तक	ब्रजभाषा	दोहा-सोरठा	573		
बरवै रामायण	मुक्तक	अवधी	बरवै छंद	69		7 काण्ड
कवितावली	मुक्तक	ब्रजभाषा	कवित्त, छप्पय			7 काण्ड

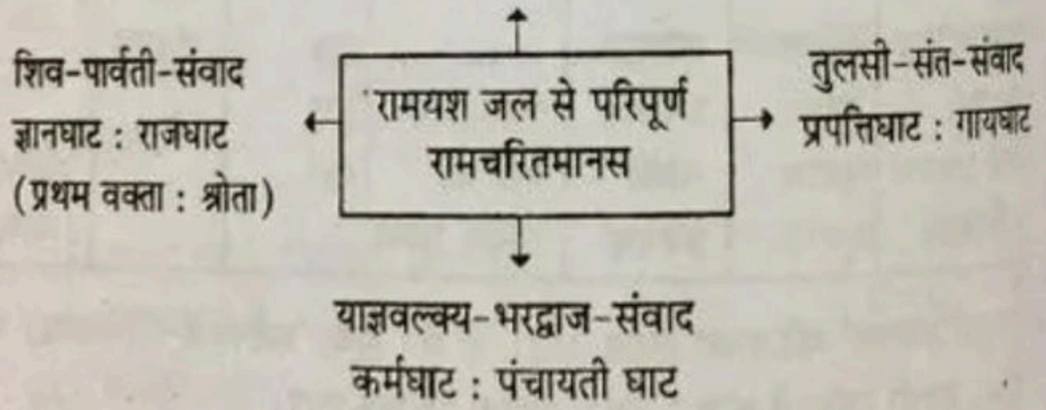
- 'रामचरितमानस' की रचना संवत् 1631 में चैत्र शुक्ल रामनवमी (मंगलवार) को हुआ। इसकी रचना में कुल 2 वर्ष 7 महीना 26 दिन लगा।
- 'रामाज्ञा प्रश्न' एक ज्योतिष ग्रन्थ है।
- 'कृष्ण गीतावली' में गोस्वामीजी ने कृष्ण से सम्बन्धी पदों की रचना की तथा 'पार्वती मंगल' में पार्वती और शिव के विवाह का वर्णन किया।
- 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' में गोस्वामीजी ने 'कलिकाल' का वर्णन किया है।
- 'कवितावली' में बनारस (काशी) के तत्कालीन समय में फैले 'महामारी' का वर्णन 'उत्तरकाण्ड' में किया गया है।
- तुलसीदास ने अपने बाहु रोग से मुक्ति के लिए 'हनुमानबाहुक' की रचना की।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रामचरितमानस' को 'लोकमंगल की साधनावस्था' का काव्य माना है।

unacademy

- 'मानस' में सात काण्ड या सोपान हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं—(1) बालकाण्ड, (2) अयोध्याकाण्ड, (3) अरण्यकाण्ड, (4) किष्किन्धाकाण्ड, (5) सुन्दरकाण्ड, (6) लंकाकाण्ड, (7) उत्तरकाण्ड।
- 'अयोध्याकाण्ड' को 'रामचरितमानस' का हृदयस्थल कहा जाता है। इस काण्ड की 'चित्रकूट सभा' को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'एक आध्यात्मिक घटना' की संज्ञा प्रदान की।
- 'चित्रकूट सभा' में 'वेदनीति', 'लोकनीति' एवं 'राजनीति' तीनों का समन्वय दिखाई देता है।
- 'रामचरितमानस' की रचना गोस्वामीजी ने 'स्वान्तः सुखाय' के साथ-साथ 'लोकहित' एवं 'लोकमंगल' के लिए किया है।
- 'रामचरितमानस' के मार्मिक स्थल निम्नलिखित है—(1) राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वन गमन, (2) चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, (3) शबरी का आतिथ्य, (4) लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, (5) भरत की प्रतीक्षा आदि।
- तुलसी ने 'रामचरितमानस' की कल्पना 'मानसरोवर' के रूपक के रूप में की है। जिसमें 7 काण्ड के रूप में सात सोपान तथा चार वक्ता के रूप में चार घाट हैं।

जिसमें 7 काण्ड के रूप में

- सप्तसोपान 'मानस' के चारों घाटों का संक्षिप्त विवरण निम्न है—



- 'मानस रूपक' तुलसी साहित्य का सबसे बड़ा रूपक है।
- अलंकार-योजना के सम्बन्ध में तुलसी को प्राप्त उपाधियाँ निम्न है—

उपाधि के प्रस्तोता	प्राप्त उपाधि
लाला भगवानदीन और बच्चन सिंह	रूपकों का बादशाह
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	अनुप्रास का बादशाह
डॉ० उदयभानु सिंह	उत्प्रेक्षाओं का बादशाह

- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।"
- 'रामचरितमानस' पर सर्वाधिक प्रभाव 'अध्यात्म रामायण' का पड़ा है।
- तुलसीदास ने सर्वप्रथम 'मानस' को रसखान को सुनाया था।
- 'रामचरितमानस' की प्रथम टीका अयोध्या के बाबा रामचरणदास ने लिखी।

unacademy

- 'रामचरितमानस' के सन्दर्भ में रहीमदास ने लिखा है—

  रामचरित मानस विमल, सन्तन जीवन प्रान।
  हिन्दुवान को वेद सम, यवनहि प्रकट कुरान॥

- भिखारीदास ने तुलसी के सम्बन्ध में लिखा है—

  तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार।
  इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार॥

- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—

  'कविता करके तुलसी न लसे, कविता पा लसी तुलसी की कला'

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"भाषा पद्य के स्वरूप को लेते हैं तो गोस्वामीजी के सामने कई शैलियाँ प्रचलित थीं जिनमें से मुख्य हैं—(क) वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति, (ख) विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति, (ग) गंग आदि भाटों की कवित्त सवैया पद्धति, (घ) कबीरदास की नीति सम्बन्धी बानी की दोहा पद्धति जो अपभ्रंश से चली आती थी और (ङ) ईश्वरदास की दोहे चौपाई वाली प्रबन्ध पद्धति। इस प्रकार भाषा के दो रूप (अवधी और ब्रज) और रचना की पाँच प्रमुख शैलियाँ साहित्य क्षेत्र में गोस्वामीजी को मिली।"

- नाभादास गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन रामभक्त कवि हैं। इनका जन्म अनुमानतः 1570 के आस-पास हुआ था।

- नाभादास ने हिन्दी में भक्तमाल की परम्परा का सूत्रपात किया। इनके गुरु का नाम 'अग्रदास' था।

- डॉ० ग्रियर्सन ने नाभादास का उपनाम 'नारायणदास' बताया है।

- नाभादास ने सन् 1585 ई० (सं० 1642) के आसपास ब्रजभाषा में 'भक्तमाल' की रचना की।

- 'भक्तमाल' में 200 कवियों का जीवनवृत्त और उनकी भक्ति की महिमासूचक बातों को 316 छप्पयों में लिखा गया है।

- सन् 1712 ई० में प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका 'रसबोधिनी' शीर्षक से ब्रजभाषा के कवित्त सवैया शैली में लिखी।

- नाभादास ने रामचरित से सम्बन्धित दो अष्टयामों की रचना की जो संस्कृत के चम्पूकाव्य शैली में रचित है।

- नाभादास ने 'अष्टयाम' की रचना शृंगार भक्ति अथवा रसिक भावना लेकर की है। इसकी अन्य विशेषता। इस प्रकार—

पुस्तक	भाषा	विशेषता
अष्टयाम	ब्रजभाषा	गद्य में राम और सीता के आठों पहरों का वर्णन
अष्टयाम	अवधी	दोहा चौपाई शैली में राम-सीता का वर्णन

- नाभादास द्वारा विभिन्न कवियों के सन्दर्भ में 'भक्तमाल' में कही गई महत्वपूर्ण पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

कवि	महत्वपूर्ण काव्य पंक्ति
कबीरदास	कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट्दरसनी

unacademy

मीराबाई	निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो
तुलसीदास	त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रसायन। इक अक्षर उच्चरै ब्रह्महत्यादि परायन। अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी। रामचरन रस मत्त रहत अहनिसि ब्रतधारी॥ संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो। कलि कुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भयो॥
सूरदास	उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन, अस्थिति अति भारी। वचन, प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्‌भुत तुकधारी। विमल बुद्धि गुन और को, जो वह गुन स्वननि धरै। 'सूर' कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै॥
नन्ददास	लीला-पद-रस-रीति-ग्रन्थ-रचना में नागर। सरस-उक्ति-युत-युक्ति, भक्ति-रह-गान-उजागर चंद्रहास-अग्रज-सुहृद, परम प्रेम-पथ में पगे। नन्ददास आनन्दनिधि, रसिक सुप्रभु-हित-रंगमगे॥

- 'अष्टयाम' में नाभादास ने लिखा है—
  अवधपुरी की शोभा जैसी। कहि नहिं सकहि शेष श्रुति तैसी॥
- केशवदास का जन्म बुन्देलखण्ड के ओरछा नामक नगर में सन् 1555 ई० में और मृत्यु सन् 1617 ई० में हुआ।
- केशवदास का उपनाम वेदान्ती मिश्र था और ये निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे।
- केशवदास ओरछा नरेश महाराज रामसिंहके भाई इन्द्रजीत सिंह के गुरु और राज्याश्रित कवि थे।

- केशवदास की रचनाओं का काल क्रमानुसार संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

पुस्तक	वर्ष ई.	अध्याय	प्रकार	विशेषता/विषय
रसिक प्रिया	1591	16 प्रभाव	रीतिग्रन्थ	रस (शृंगार) का वर्णन
रामचन्द्रिका	1601	39 प्रकाश	प्रबन्ध	राम के चरित्र पर आधारित
कविप्रिया	1601	16 प्रकाश	रीतिग्रन्थ	अलंकारों का वर्णन
रतन बावनी	1607	53 छंद	प्रबन्ध	डिंगल शैली का एक राजनीतिक ग्रन्थ
वीरसिंह देव चरित	1607	33 प्रकाश	प्रबन्ध	वीरसिंह देव पर आधारित ऐतिहासिक काव्य
विज्ञान गीता	1610	21 प्रभाव	प्रबन्ध	प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद
जहाँगीर जस चन्द्रिका	1612		प्रबन्ध	जहाँगीर के दरबार का वर्णन
नखशिख			रीतिग्रंथ	राधा के अंगों-उपांगों का वर्णन
छंदमाल			रीतिग्रंथ	छन्दों का वर्णन

- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ० नगेन्द्र और गणपतिचन्द्र गुप्त प्रभृति विद्वानों ने केशवदास को हिन्दी में रीतिकाव्य का प्रवर्तक माना है।
- 'कविप्रिया' रीति ग्रन्थ की रचना इन्द्रजीत सिंह की एकनिष्ठ प्रेमिका गणिका (वेश्या) 'प्रवीण राय' को शिक्षा देने के लिए की गयी थी।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल केशव को अलंकारवादी मानते हैं। केशवदास ने स्वयं लिखा है—

  जदपि सुजति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
  भूषन बिनु न विराजई, कविता वनिता मित्त॥

- केशवदास भामह, दंडी और उद्भट के अनुयायी थे।
- ऐसा माना जाता है कि केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' की रचना तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की प्रतिस्पर्धा में एक रात में की।
- गुमान कवि ने 'रामचन्द्रिका' की प्रतिस्पर्धा में 'कृष्णचन्द्रिका' लिखी।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने केशवदास की कटु आलोचना करते हुए लिखा है, "केशव को कवि हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए। वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पाण्डित्य और रचना कौशल की धाक जमाना चाहते थे।"
- डॉ० विजयपाल सिंह ने केशवदास को 'कोर्ट का कवि' कहा है।
- केशवदास कृत रामचन्द्रिका पर प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, अनर्घराघव कादम्बरी तथा नैषधचरित का प्रभाव पड़ा है।

नैषधचरित का प्रभाव पड़ा है।

- आलोचकों के केशवदास व रामचन्द्रिका के सम्बन्ध में निम्नांकित कथन हैं—

आलोचक	प्रमुख कथन
	कवि को दीन न चहै विदाई। पूछै केसव की कविताई॥
नाभादास	उडगन केशवदास
रामचन्द्र शुक्ल	कठिन काव्य का प्रेत
रामस्वरूप चतुर्वेदी	रामचन्द्रिका छन्दों का एक अजायबघर है।

- सेनापति का जन्म सन् 1589 ई० के आसपास माना जाता है। इनके गुरु का नाम 'हीरामणि दीक्षित' था।
- सेनापति द्वारा रचित दो ग्रन्थ है—
  (1) **कवित्त रत्नाकर**—इसमें पाँच तरंग और 394 छंद में राम कथा का वर्णन है।
  (2) **काव्य कल्पद्रुम**—इसे एक रीति ग्रन्थ माना जाता है।
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सेनापति के सन्दर्भ में लिखा है—'ये बड़े ही सहृदय कवि थे। ऋतु वर्णन तो इनके जैसा और किसी शृंगारी कवि ने नहीं किया।'
- सेनापति ब्रजभाषा के कवि हैं और इनका सर्वाधिक प्रिय अलंकार 'श्लेष' है।
- अन्य राम भक्त कवि निम्नांकित हैं—

कवि	रचनाएँ
प्राणचन्द चौहान	रामायण महानाटक (1610 ई०)
माधवदास चरण	(1) रामरासो (1618), (2) अध्यात्म रामायण (1624 ई०)

unacademy

हृदय राम	हनुमन्नाटक (1623 ई०)
रायमल्ल पांडे	हनुमच्चरित (1639 ई०)
नरहरि बारहट	पौरुषेय रामायण
लालदास	अवध विलास (1643 ई०)
कपूर चन्द्र त्रिखा	रामायण (1646 ई०)

- ❑ 'रामायण महानाटक' एक संवादात्मक प्रबन्ध काव्य है जिसमें दोहा-चौपाई की प्रधानता है।
- ❑ हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' पर संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' का सर्वाधिक प्रभाव है। इसका एक नाम 'रामगीत' भी है।
- ❑ 'पौरुषेय रामायण' नरहरिकृत 'चतुर्विंशति अवतार चरित्र' नामक विशाल ग्रन्थ का एक अंश है।
- ❑ कपूरचन्द्र त्रिखा कृत 'रामायण' गुरुमुखी लिपि में लिखी 145 छंदों की ब्रजभाषा की कृति है।

तुलसीदास की सम्पूर्ण रचनाएं

लघु रचनाएं

बड़ी रचनाएं

पंचरत्न

ब्रज

अवधी

प्रबंध

मुक्तक

गीतिकाव्य

कालक्रम



unacademy

आचार्य शुक्ल लिखते हैं–

राम गुलाम द्विवेदी के अनुसार तुलसीदास जी की कुल 12 रचनाएं हैं। पाँच बड़ी सात छोटी।

बड़ी रचनाएं

1. दोहावली
2. कवितावाली(हनुमान बहुक)
3. गीतावाली
4. रामचारित मनास
5. विनय पत्रिका

लघु रचनाएं

1. जानकी मंगल
2. पार्वती मंगल
3. बरवै रामायण
4. कृष्णगीतावली
5. रामाज्ञा प्रश्न
6. रामलला
7. नहअछू

आचार्य शुक्ल लिखते हैं–

शिवसिंह सरोज में तुलसी की 10 और रचनाएं मिलती हैं।

शिवसिंह सरोज -

1. राम सतसई
2. संकट मोचन
3. हनुमान बाहुक
4. राम सलाका
5. छंदावली
6. छप्पय रामायण
7. रोल रामायण
8. कड़खा रामायण
9. झूलना रामायण
10. कुंडलियाँ रामायण

- *बेनीमाधवदास* कृत **गोसाई चरित्र** में भी "**राम सतसई**" का नाम मिलता है।
- **बरवै रामायण रहीम के कहने पर बनाया था।**
- **कृष्णगीतावाली वृंदावन की यात्रा के अवसर पर बनी थी।**

- **पर बाबा बेनीमाधवदास के गोसाई चरित्र के अनुसार रामगीतावली कृष्णगीतावली ग्रंथ उस वक़्त बने जब सूरदास जी उनसे मिलने चित्रकूट गए थे।**

- **रामाज्ञा प्रश्न अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी के कहने पर बनाई थी।**

unacademy

तुलसीदास के पंचरत्न

1. रामलला नहअछू
2. जानकी मंगल
3. पार्वती मंगल
4. बरवै रामायण
5. वैराग्य संदीपनी

अरे पार्वती, जानकी के बर रामलला से बैर न कर वो पंचरत्न देंगे।

unacademy

तुलसीदास जी के ग्रंथों की भाषा

ब्रज भाषा के ग्रंथ –

1. कवितावली
2. गीतावाली
3. कृष्णगीतावली
4. वैराग्य संदीपनी
5. विनय पत्रिका

रामलला नहअछू की भाषा – ठेठ अवधी

ब्रज वाली संदीपनी विनय से मिली

unacademy

तुलसीदास जी रचनाओं के काव्यरूप

प्रबंध -

1. रामलला नहअछू
2. जानकी मंगल
3. पार्वती मंगल
4. रामचारित मानस

राम के मंगल के लिए नहअछू का प्रबंध करो।

गीतिकाव्य

1. गीतावाली
2. कृष्ण गीतावाली
3. विनय पत्रिका

मुक्तक

1. वैराग्य संदीपनी
2. रामाज्ञा प्रश्न
3. दोहावली
4. बरवै रामायण
5. कवितावली

उत्तरकाण्ड

1. कवितावली
2. गीतावली
3. बरवै रामायण
4. रामचारित मानस

unacademy

तुलसीदास की रचनाओ का कालक्रम

1. सं. 1626- वैराग्य संदीपनी, दोहावली
2. सं. 1627 – रामाज्ञा प्रश्न
3. सं. 1628 – रामलला नहअछू
4. सं. 1629 – जानकी मंगल
5. सं. 1630- गीतावाली, बरवै रामायण
6. सं. 1631 – रामचारित मानस, कवितावली, विनय पत्रिका
7. सं. 1643- पार्वती मंगल, कृष्ण गीतावाली